

# बृहत-आर्थिक विकास की लघु बुनियादे

## 2

### अध्याय

भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए यह वर्ष निराशाजनक विकास का वर्ष था। पिछले दो वर्षों 2009-10 और 2010-11 के दौरान भारत का सकल घरेलू उत्पाद (उपादान लागत पर) 8.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर बढ़ा। इसके अलावा, वर्ष 2010-11 में बाज़ार मूल्यों पर सकल घरेलू उत्पाद में 9.6 प्रतिशत की शानदार बढ़ोतरी हुई। यह प्रदर्शन इस बात के चलते कमाल का था कि यह सब एक ऐसी मन्दी के बाद हुआ जो इतिहास की सबसे बड़ी वैश्विक मन्दियों में से एक थी। इससे उन उम्मीदों को बल मिला कि 2008-09 में भारत की संक्षिप्त आर्थिक मन्दी, जब सकल घरेलू उत्पाद 6.7 प्रतिशत की दर पर बढ़ा, अब बीते समय की बात हो गई है और अर्थव्यवस्था पूर्ण पुनरुद्धार की राह पर है। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (आईआईपी) अप्रैल 2011 में तेज़ी से गिर गया और इसके बाद से सात महीने का प्रदर्शन साधारण रहा है। सेवा क्षेत्र ने अच्छा प्रदर्शन जारी रखा और कृषि क्षेत्र भी उबरा लेकिन अर्थव्यवस्था का मिज़ाज अब अधिकाधिक औद्योगिक क्षेत्र, खास तौर पर, विनिर्माण क्षेत्र तय कर रहा है जो औद्योगिक मूल्यवर्धन का 75.5 प्रतिशत हिस्सा बैठता है। समग्र सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि 2011-12 की पहली तिमाही में गिरकर 7.7 प्रतिशत और फिर दूसरी तिमाही में 6.9 प्रतिशत रह गई। केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय (सीएसओ) के अग्रिम अनुमानों के अनुसार 2011-12 में वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि 6.9 प्रतिशत रहेगी। यह स्थिति कुछ अजीबोगरीब सी है क्योंकि हम इन आंकड़ों का कैसे आकलन करते हैं, यह विश्लेषणकर्ता के दृष्टिकोण पर बहुत निर्भर करता है। विश्व भर में छापी हताशा और वैश्विक विकास में निरंतर हो रही गिरावट को देखते हुए, ये आंकड़े खराब नहीं बल्कि ठीक लग रहे हैं, खासकर यदि कोई विश्लेषणकर्ता इस स्थिति को यूरोपीय नज़रिए से देख रहा हो। लेकिन वर्ष 2003 से और विशेषकर 2005 के बाद से भारत के प्रदर्शन से तुलना करने पर ये आंकड़े निराशा ही करते हैं।

2.2 इससे पहले कि हम आत्मसंतोष के जाल में फंस जाएं—यही ठीक होगा कि भारतीय नीति-निर्माता उत्तरोक्त दृष्टिकोण को बेंचमार्क के रूप में देखें और यह सवाल उठाएं कि इस मंदी के कारण क्या हैं और हम, जो नीति-निर्माता और योजना बनाने वाले हैं, भारत को वापस उसी स्थान पर लाने के लिए क्या कर सकते हैं जहां वह पहले था—विश्व की सबसे तेज़ी से बढ़ती तीन या चार अर्थव्यवस्थाओं में से एक—ताकि ये पिछले सात-आठ महीने सिर्फ एक संक्षिप्त सी मन्दी बनकर रह जाएं और हम जल्दी से वापस उसी तेज़, समावेशी विकास की राह पर लौट आएं। ऐसा कार्य पूरी तरह व्यवहार्य है। एकमात्र जोखिम यही है कि जब भी अर्थव्यवस्था की बात आती है, हमेशा ही संकट से जूझना पड़ता है। यह अहसास होना ज़रूरी है कि यदि हमारा सारा समय संकटों का सामना करने में ही निकल जाएगा तो संभावना यही है कि आगे चलकर और अधिक संकट आएंगे क्योंकि संकट से परे के विषयों पर तो अनुसंधान और विकास करने के लिए पर्याप्त समय

नहीं दिया गया होगा और प्रयास नहीं किए गए होंगे। इसलिए, एक अच्छी नीति, जो हमारे लिए न सिर्फ उपयोगी होती है बल्कि राष्ट्र को एक बेहतर भविष्य की राह पर भी ले जाती है, के निर्माण के लिए ज़रूरी है कि हम कभी-कभार थोड़ा रूकें, इस बात का जायज़ा लें कि हम क्या कर रहे हैं और कैसे कर रहे हैं, सामयिक अनुसंधान का अध्ययन करें, पुरानी और नई नीतिगत पहलों का मूल्यांकन करें और नए बदलाव लाने का प्रयास करें। **आर्थिक समीक्षा** ऐसा ही कुछ करती है और खासकर अध्याय 2 तो पिछले कुछ वर्षों से अर्थव्यवस्था की स्थिति पर गहरी नज़र डालने और ऐसी नीति सुझाने के कार्य में लगा है जो भारत को सतत्, समावेशी और समग्र विकास का मज़बूत आधार दे सके।

2.3 तदनुसार, यह अध्याय वर्ष के दौरान उभरी कुछ बहुत गंभीर समस्याओं पर केंद्रित है—जैसे कि मुद्रास्फीति, औद्योगिक विकास में आया धीमापन, स्टैण्डर्ड एण्ड पुअर्ज़ (एस एण्ड पी)

द्वारा अमरीकी सॉबरेन रेटिंग की दर्जावनति से उत्पन्न विनिमय दर संबंधी उतार-चढ़ाव, मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों के बीच संतुलन स्थापित करने की कार्रवाई—और कुछ ऐसी चुनौतियां जिनका सामना हम इस वर्ष के नई पंचवर्षीय योजना की शुरुआत होने की वजह से कर रहे हैं—इनमें प्रमुख अवसरचर्चागत निवेश, मानव पूंजी का निर्माण और गरीबी एवं कुपोषण को समाप्त करने के लिए नींव तैयार करना शामिल है। इन सभी विषयों पर इस समीक्षा में किसी न किसी रूप में चर्चा की गई है। इस अध्याय में, उनकी पड़ताल अधिक सूक्ष्म स्तर पर और अनुसंधान एवं वास्तविक नीति के लिए नए विचार पेश करने की दृष्टि से की गई है। भारत में जब भी नीतियां असफल हुई हैं, तो इसकी वजह व्यापक अवधारणा न होकर अक्सर दोषपूर्ण कार्यान्वयन और तफसील में न जाना रहा है। गलती आम तौर पर उन व्यक्तियों के व्यवहार एवं प्रोत्साहनों को समझने में होती है जिन्हें नीतियों से लाभान्वित होना है और जिन्हें उनका दैनिक कार्यकरण संभालना है। सौभाग्यवश, भारत में अर्थशास्त्र के साथ-साथ नीतियों की संरचना में भी बदलाव की शुरुआत हो गई है। अब इस बात को अधिकाधिक स्वीकारा जाने लगा है कि दोषपूर्ण लघु-बुनियादें बेहतरिन बृहत-उद्देश्यों का सर्वनाश कर सकती हैं।

## मुद्रास्फीति और विकास : मौद्रिक और राजकोषीय नीतियां

2.4 वित्त वर्ष 2011-12 की शुरुआत मुद्रास्फीति के दो अंकों के नज़दीक रहने के खतरे से हुई। अप्रैल 2011 में थोक मूल्य सूचकांक (डब्ल्यूपीआई) 9.74 प्रतिशत था और खाद्य मुद्रास्फीति 8.95 प्रतिशत थी जिनमें कमी होने के कोई आसार नहीं थे। चूंकि उच्च मुद्रास्फीति की शुरुआत दिसंबर 2009 में हुई थी, यह बड़ी चिन्ता का सबब था जिससे पर्यवेक्षकों ने यह सवाल उठाया कि क्या यह नई “सामान्य” स्थिति है जिसका हमें अब आदी होना होगा। सरकार कई नपे-तुले कदम उठाकर इस समस्या से जूझती रही। इन कदमों में आपूर्ति विशेषकर खाद्य एवं बुनियादी कृषि उत्पादों की आपूर्ति में सुधार लाने और राजकोषीय एवं राजस्व घाटों को कम करने की नीतियों का मिला-जुला रूप शामिल था। भारतीय रिज़र्व बैंक ने स्वतंत्र रूप से मौद्रिक नीति में सख्ती बरती। यह दावा करना मूर्खता होगी कि हमारी सभी नीतियां सही रहीं। इस तरह के ज़रूरी सवाल उठाए जा सकते हैं कि इस बात को देखते हुए कि यह मुश्किल भरा वर्ष था, क्या सरकार ने राजकोषीय समेकन के मोर्चे पर पर्याप्त कार्रवाई की तथा क्या भारतीय रिज़र्व बैंक ने मौजूदा वैश्विक माहौल में, जहां औद्योगिक राष्ट्र ब्याज दरों को शून्य के आस-पास रख रहे हैं, ब्याज दर नीति का सही इस्तेमाल किया। अर्थशास्त्र की कुछ शाखाओं को छोड़कर, जैसेकि नीलामी-सिद्धान्त जहां अर्थशास्त्र इंजीनियरी सिद्धान्तों के समान ठोस और व्यवहार्य तकनीकें प्रदान करता है, मौद्रिक और राजकोषीय नीतियां अंशतः विज्ञान और अंशतः अंतर्दृष्टि और सहज बुद्धि का मेल होती हैं।

2.5 एक बात साफ है कि कुल मिलाकर यह पैकेज अपना काम कर गया। मुद्रास्फीति दिसंबर 2011 से कम होना शुरू हो गई। खाद्य मुद्रास्फीति कम होकर लगभग शून्य थी और जनवरी 2012 में सामान्य डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति 6.55 प्रतिशत थी। हालांकि मुद्रास्फीति से हुए संघर्ष का असर विकास पर पड़ा और वह धीमा पड़ गया। हम पहले से जानते थे कि ऐसा होगा, लेकिन बड़ी दीर्घाधिक क्षति या बेरोजगारी में बढ़ोतरी के कोई संकेत नहीं थे। मुद्रास्फीति की गाथा यह दिलासा देती है कि कई महीनों के बाद, सरकार समावेशी विकास पर अधिक ध्यान देने की स्थिति में है। जहां तक मुद्रास्फीति का संबंध है, हमें चौकस रहना होगा क्योंकि हम अभी खतरे से पूरी तरह से बाहर नहीं हैं और हमे धीरे-धीरे इसे 5 प्रतिशत से नीचे लाना है। लेकिन अब सरकार का मुख्य सरोकार अर्थव्यवस्था की उत्पादकता को बढ़ाना और आय-वितरण में सुधार लाना है। इसका अर्थ यह है कि आने वाले वर्ष में विकास पर पूरा ज़ोर रहेगा।

2.6 भारत की मुद्रास्फीति की चुनौती का सामना भारतीय रिज़र्व बैंक और सरकार की ओर से तथा वित्त मंत्रालय और अन्य कई मंत्रालयों के साथ मुद्रास्फीति संबंधी अन्तः मंत्रालयी समूह (आईएमजी) द्वारा किए गए प्रयासों के कुशल मिले-जुले रूप से किया गया। मौद्रिक, राजकोषीय और आपूर्ति श्रृंखला के प्रबंधन के कई मोर्चों पर कार्रवाई की गई ताकि खेतों से घरों तक वस्तुओं को पहुंचाने की व्यवस्था में सुधार लाया जा सके। नीति को लेकर अनेक नए विचार पेश किए जा रहे थे। हालांकि कुछ पर्यवेक्षक शायद इससे चिंतित भी हुए, सच तो यह है कि अधिक चिन्ताजनक बात यह थी कि क्या इन्हें लेकर सर्वसम्मति थी। अर्थशास्त्र के कुछ ऐसे विषय हैं जहां ज्ञान अच्छा-खासा स्थिर है और इन मामलों में सामान्य सहमति कोई हैरानी की बात नहीं होती। लेकिन अर्थशास्त्र के कुछ ऐसे हिस्से भी हैं जहां शीर्ष स्तर पर कार्य कर रहे अनुसंधानकर्ताओं के पास भी सर्वसम्मति समाधान नहीं हैं। ऐसे मामलों में निश्चितता से कुछ कहना अज्ञानता दिखाना है। जैसाकि विस्लावा शिमबोस्का ने अपने नोबेल व्याख्यान में कहा, “यदि आइज़ैक न्यूटन ने स्वयं से यह कभी नहीं कहा होता कि “मैं नहीं जानता” तो उनके छोटे से बगीचे में सेबों के गिरने से उनका अम्बार लग गया होता और ज़्यादा से ज़्यादा यही होता कि वह सेब उठाते और खुशी-खुशी उन्हें चट कर गए होते।”

2.7 इससे पहले कि हम बृहत्-आर्थिक नीति की बात करें, कीमतों की अस्थिरता, खासकर जल्दी खराब होने वाली वस्तुओं, जैसेकि अधिकतर खाद्य वस्तुओं की कीमतों की अस्थिरता पर काबू पाने के लिए आपूर्ति प्रबंधन के महत्त्व का जिक्र करना उपयोगी होगा। वित्त वर्ष 2011-12 में कृषि उत्पादकता और आपूर्ति श्रृंखलाओं में सुधार लाने के लिए अनेक उपाय किए गए। पिछले बजट में, पूर्वी भारत में हरित क्रांति को बढ़ावा देने के लिए 400 करोड़ रुपये और दालों के उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए 300 करोड़ रुपये का आवंटन किया गया था। इसके अच्छे परिणाम हुए हैं और इनसे खाद्य-मुद्रास्फीति को काबू में लाने में मदद मिली है।

खाद्यान्न भण्डारण की सुविधाओं में सुधार लाने के लिए भी विशेष प्रयास किए गए हैं ताकि भारत खाद्यान्न के मामले में अधिक आत्मनिर्भर बन सके। इसके पीछे यह विचार काम कर रहा है कि (1) बुनियादी खाद्यान्नों की खरीद की जाए ताकि लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली और मध्याह्न भोजन की योजनाओं जैसे विभिन्न कार्यक्रमों के ज़रिए गरीब और कमजोर परिवारों को खाद्यान्न मुहैया कराया जा सके और (2) यह भी सुनिश्चित किया जाए कि हम प्रचुरता के वर्षों में अपना सुरक्षित भंडार बढ़ाएं और कमी के वर्षों में इन्हें वितरित करें। साल-दर-साल कीमतों को स्थिर रखने के लिए ऐसा करना बहुत ज़रूरी है और इसके लिए हमें अतिरिक्त भण्डारण सुविधाओं की ज़रूरत होगी।

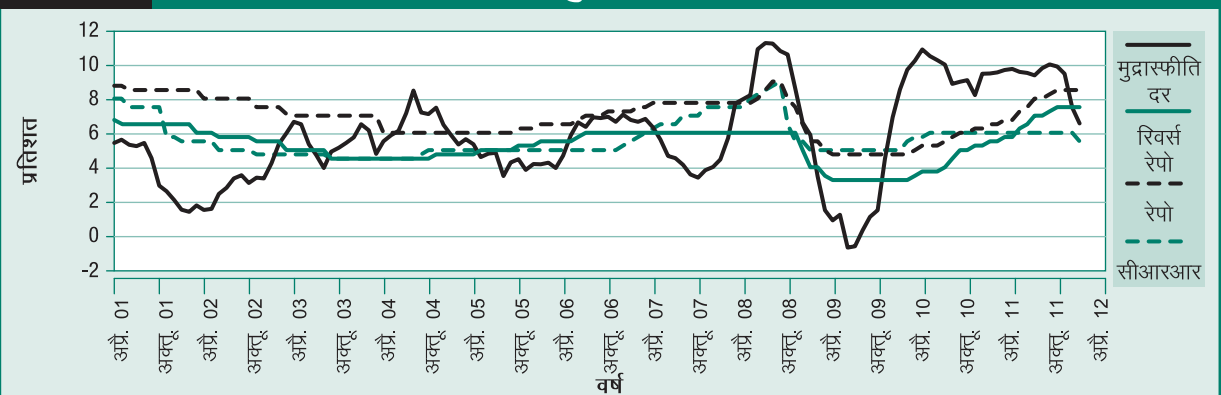
2.8 मुद्रास्फीति संबंधी अन्तःमंत्रालयी समूह (आईएमजी) ने किसान से उपभोक्ता तक की आपूर्ति श्रृंखला में सुधार लाने के लिए अनेक उपायों की सिफारिश की। प्रास्थिति पत्र में, आईएमजी ने कहा कि अक्सर ऐसा होता है कि टमाटर के लिए किसान के प्रति कि॰ग्रा॰ 3 रूपये की कीमत मिलती है, जबकि उपभोक्ता प्रति कि॰ग्रा॰ 15 रूपये अदा करता है। इस समूह ने सिफारिश की कि हमें कृषि उत्पाद विपणन समिति (एपीएमसी) अधिनियमों में संशोधन करना चाहिए ताकि बिचौलियों का बड़ा मूल्य-मार्जिन कम किया जा सके। इसने सिफारिश की कि आपूर्ति श्रृंखला में सुधार लाने और किसानों को लाभ पहुंचाने का एक तरीका मल्टि-ब्रांड खुदरा व्यापार में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआई) की अनुमति देना है। आईएमजी ने तर्क दिया कि यदि सावधानी पूर्वक बनाई गई विनियामक संरचना के भीतर ही इसकी अनुमति दी जाती है तो इससे किसान तथा साधारण उपभोक्ता भी बहुत लाभान्वित होंगे। इसके अलावा, इसके कारण भारत में खुदरा क्षेत्र का बहुत विस्तार हो सकता है जिससे आगे चलकर छोटे, मध्यम दर्जे के व्यापारी भी लाभान्वित होंगे। इसके पीछे तर्क यह है कि जहां फार्म गेट और खुदरा व्यापार के बीच मूल्य-मार्जिन में गिरावट होगी, वहीं खुदरा व्यापार के समूचे आकार में काफी बढ़ोतरी हो जाएगी जिससे कारोबार की अधिक मात्रा के कारण ही मध्यम दर्जे के व्यापारी लाभान्वित होंगे। ये तर्क अब परिचर्चा के लिए और आगे चलकर नीतिगत कार्रवाई के लिए सार्वजनिक मंच पर आ चुके हैं। इसके अलावा, यह सुनिश्चित

करने की ज़रूरत है कि कृषि उत्पादों की एक राज्य से दूसरे राज्य में बाधरहित आवा-जाही हो।

2.9 बृहत-आर्थिक नीति तैयार करने में विज्ञान और सहज बुद्धि का सहारा लेना पड़ता है। इसमें से किसी एक पहलू को नज़रअन्दाज करना ग़लत होगा। हमें उपलब्ध श्रेष्ठतम वैज्ञानिक जानकारी बटोरनी चाहिए और इन बृहत-आर्थिक सरोकारों की व्यष्टि आर्थिक बुनियादों का अध्ययन करना चाहिए तथा फिर नीति तैयार करने के लिए इन्हें अन्तर्दृष्टि और सहज बुद्धि के मेल से संयोजित करना चाहिए। भारत में, मौद्रिक नीति के साधनों में विशिष्ट रूप से रेपो दर, प्रारक्षित नकदी अनुपात (सीआरआर) और कुछ अन्य यदा-कदा की जाने वाली दखल कार्रवाइयां शामिल हैं जैसे खुले बाज़ार के प्रचालन और बचत बैंक ब्याज दर की नीति में परिवर्तन, जिन्हें मौद्रिक नीति के अंतर्गत माना जा सकता है और नहीं भी। यह उल्लेखनीय है कि बचत बैंक की ब्याज दरों का अक्टूबर 2011 से विनियंत्रण कर दिया गया है। इसके अलावा, चूंकि इस वर्ष भारतीय रिज़र्व बैंक ने पहले घोषित किया था कि रेपो और रिवर्स रेपो दरों के बीच विस्तार अब से 100 आधार बिन्दु पर नियत किया जाएगा, इसलिए अब ये दो साधन मूलतः एक ही साधन हैं।

2.10 दिलचस्प सवाल तो यह है : नियंत्रण के इन साधनों और नियंत्रण के उद्देश्य अर्थात् डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति दर के बीच संबंध कितना ज़ोरदार है? इसका उत्तर चित्र 2.1 में स्पष्ट है। इस चित्र में मौद्रिक नीति के दो सबसे महत्वपूर्ण साधन—रेपो दर और सीआरआर के साथ-साथ लक्षित परिवर्तनीय कारक डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति को दिखाया गया है। इस आरेख पर एक नज़र डालने के बाद ज़ाहिर हो जाता है कि नीतिगत साधनों और मुद्रास्फीति के बीच सहसंबंध मामूली है। यदि हम अन्तराल रखकर आरेख के आधारभूत आंकड़ों का अन्तराल रखकर सावधानीपूर्वक सांख्यिकीय विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि नीतिगत साधनों का मुद्रास्फीति पर एक अन्तराल के साथ अवश्य ही असर पड़ता है। इसकी पुष्टि औद्योगिकीकृत राष्ट्रों में किए गए सजग अध्ययनों से हो चुकी है। फिर भी, आंकड़ों की भरमार है और सह-संबंध यथातथ्यता के आस-पास भी नहीं। इतना तक कि इष्टतम नियंत्रण क्या होता है, उसे लेकर विचारों की

चित्र 2.1 पॉलिसी दर संबंधी घट-बढ़ और मुद्रास्फीति



बहुतायत की गुजांश है (देखें बाक्स 2.1)। इसी से इस क्षेत्र में सतत् अनुसंधान की ज़रूरत रेखांकित होती है। यह खुलेपन की नीति को लेकर भारत की प्रतिबद्धता का ही प्रमाण है कि इस विषय पर अनेक प्रकार की सलाह और विचार प्रस्तुत किए गए।

2.11 भारतीय रिज़र्व बैंक ने इस बात पर बहुत बार चिन्ता व्यक्त की कि सरकार जिस राजकोषीय घाटे को बरदाश्त कर रही थी, वह बहुत अधिक था और इससे मुद्रास्फीति को काबू में रखने का काम ज़्यादा मुश्किल हो रहा था। सरकार में ही कुछ ऐसे भी थे जो महसूस करते थे कि लगातार 13 बार मौद्रिक सख्ती करने का मुद्रास्फीति पर पर्याप्त प्रभाव नहीं पड़ा और ब्याज-दरें बढ़ाने से विकास पर अधिक असर पड़ रहा था; और इसके लिए सब बातों पर पुनर्विचार किए जाने की ज़रूरत थी क्योंकि हम एक ऐसी दुनिया में रह रहे हैं जिसमें औद्योगिकीकृत राष्ट्र लगभग-शून्य ब्याज दर रखे हुए हैं जिससे अकुशल ब्याज-दर मध्यस्थता की क्षमता पैदा होती है। ज़िम्मेदारी के सुस्पष्ट विभाजन का अर्थ है कि

अन्ततः भारतीय रिज़र्व बैंक को स्वतंत्र रूप से यह तय करना है कि मौद्रिक नीति के बारे में क्या किया जाए और वित्त मंत्रालय को राजकोषीय नीति के बारे में निर्णय लेना है। निर्णय लेने की इस संरचना को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक निकाय ने प्रस्तुत विचारों का मनन किया है और अपने संबंधित क्षेत्र में स्वतंत्र निर्णय लिए हैं तथा इसमें सफलता मिली है। जैसाकि पहले उल्लेख किया गया है, मुद्रास्फीति धीरे-धीरे कम हुई है और बेरोजगारी में कोई अधिक बढ़ोतरी भी नहीं हुई है।

2.12 कहानी यहीं खत्म नहीं हो जाती : पिछले कुछ महीनों में विकास धीमा हो गया है और सरकार का राजकोषीय संतुलन दबाव में है। उचित ही, यह तर्क दिया जा सकता है कि ऐसे समय में जब विश्व में दोबारा मंदी छा जाने का और भारत में आर्थिक धीमेपन का जोखिम वास्तविक है, हमें राजकोषीय घाटे को कम करने में नियंत्रित रहना होगा ताकि तात्कालिक विकास में गिरावट को बढ़ावा न दिया जाए। इसलिए यह वर्ष अत्यधिक राजकोषीय

### बाक्स 2.1 : अनुभव की बुनियाद पर बृहत अर्थशास्त्र

मौद्रिक नीति की आनुभविक बुनियादों को लेकर हमारी समझ में वस्तुतः सैद्धांतिक बदलाव आया जब क्रिस्टोफर सिम्स द्वारा विकसित किए गए नए सांख्यिकीय साधन वेक्टर ऑटोरिग्रेशन (वीएआर) का आगमन हुआ। वीएआर हमें अनेक परिवर्तनीय कारकों और उनमें समय-समय पर हुई घटबढ़ के बीच परस्पर संबंध का अध्ययन करने में मदद करता है और हमारे लिए वास्तविक रूप से कार्यकरण संबंधों की विवेचना करना संभव बनाता है। इस तकनीक का इस्तेमाल करके अनुसंधानकर्ता बृहत आर्थिक नीति के परिवर्तनीय कारकों और मुद्रास्फीति के बीच कारणात्मक संबंधों का पता लगाने में समर्थ रहे हैं, जो देखने से तो बिल्कुल निराशाजनक लगता है क्योंकि बृहत आर्थिक आंकड़ों के साथ निरर्थक लफ्फाजी भी रहती है।

वीएआर और अमरीका से प्राप्त आंकड़ों का प्रयोग करके किए गए अध्ययन यह दर्शाते हैं कि ब्याज दर-अमरीका के मामले में फेडरल फंड दर-में परिवर्तन करके केन्द्रीय बैंक द्वारा दिए गए मौद्रिक झटके, मुद्रास्फीति दर जैसे परिवर्तनीय मौद्रिक कारकों पर असर डालते हैं, भले ही समय अंतराल बहुत अधिक हो, और अंततः यह असर कम होता जाता है। इस प्रकार, सरकार द्वारा दिए गए व्यय संबंधी सकारात्मक झटकों और कर की दर में अचानक कटौती करने का, वास्तविक विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है चाहे वह अस्थायी ही हो।

थॉमस साजेंट और उसके सहलेखकों द्वारा किए गए सारगाभित कार्य ने मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच के संबंध पर प्रकाश डाला है। यह विश्वास करने का कारण अवश्य है कि अल्पावधि परिप्रेक्ष्य में, स्टैण्डर्ड फिलिप्स का कर्व प्रमेय वैध है कि मुद्रास्फीति कम करने से बेरोजगारी बढ़ती है। लेकिन दीर्घावधि परिप्रेक्ष्य में इसका बेरोजगारी पर नगण्य प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में, मुद्रास्फीति में परिवर्तन का बेरोजगारी पर पड़ने वाला असर अस्थायी होता है। आखिरकार, बेरोजगारी वहीं लौट आती है जहां यह पहले थी।

इन आधुनिक तकनीकों का प्रयोग करके किए गए अनुसंधान भी हमें विभिन्न बृहत आर्थिक नीतियों के बीच के अंतर-संबंधों का विश्लेषण करने में समर्थ बनाते हैं। उदाहरण के लिए, साजेंट और वेल्लेस द्वारा किया गया कार्य यह दर्शाता है कि किस तरह मौद्रिक और राजकोषीय नीतियां सचमुच परस्पर संबंधित हैं। बड़ा राजकोषीय घाटा सीनियरिज की ज़रूरत पैदा करता है और चूँकि मौद्रिक नीति सीनियरिज पैदा कर सकती है, इसलिए यह केन्द्रीय बैंकों पर मौद्रिक दखल कार्रवाई करने का दबाव बनाता है।

दुर्भाग्यवश, इनमें से अधिकतर अध्ययन अमरीका अथवा यूरोप के अनुभव पर आधारित हैं। ये जहां यह दर्शाते हैं कि इन संबंधों की व्यापक रूपरेखा इन राष्ट्रों के लिए समान है, वहीं कुछ परिवर्तन भी दिखाई देते हैं। यह भारतीय आंकड़ों का इस्तेमाल करके गहन अनुसंधान करने की आवश्यकता की ओर इशारा करता है। खासकर इसलिए कि पूरी तरह औद्योगिकीकृत राष्ट्र और एक उभरती अर्थव्यवस्था के बीच अंतर अधिक सुस्पष्ट हो सकते हैं। यह भी कि दिन दूनी रात चौगुनी तरीके से वैश्वीकरण होने के चलते विश्व की आर्थिक संरचना में परिवर्तन हो रहे हैं और यह माना जा सकता है कि जिन नीतियों का पहले प्रभाव पड़ा था, वे उसी तरह असरदार नहीं रह सकतीं या उनमें संशोधन की ज़रूरत पड़ सकती है। राष्ट्रीय नीति के स्तर पर मामूली सुधार से भी लोगों के कल्याण पर बड़ा भारी असर पड़ सकता है। यह सिर्फ भारत में अधिक बुनियादी अनुसंधान की ज़रूरत को रेखांकित करता है। अर्थशास्त्र के केवल निगमनिक सिद्धांतों की नजर से इस बात का महत्व नहीं है कि वे अध्ययन कहां किए जाते हैं। लेकिन नीति संबंधी अनुसंधान बहुत संदर्भ-संवेदी हो सकता है और यह बहुत ज़रूरी है कि भारत इस विषय में अपनी स्वतंत्र क्षमता को मजबूत बनाए।

स्रोत और संदर्भ : (1) रॉयल स्वीडिश एकेडेमी ऑफ साइंसिज (2011), "एम्पिरिकल मैक्रो इकनॉमिक्स," सायंटिफिक बैकग्राउण्ड ऑफ स्वेरिजिस रिक्सबैंक प्राइज़ इन इकनॉमिक सायंसिस इन मेमरी ऑफ एल्फ्रेड नोबेल 2011, (2) साजेंट, टी-जे (1971), "ए नोट ऑन दि "एक्सलरेशनिस्ट" कन्ट्रोवर्सी, जर्नल ऑफ मनी, क्रेडिट एण्ड बैंकिंग, वॉल्यूम 3, (3) साजेंट, टी-जे और एन-वैलेस (1981), सम अन्वलेजेंट मानीटरिस्ट अरिथमेटिक, फेडरल रिज़र्व बैंक ऑफ मिनीयापलिस, क्वार्टरली रिव्यू, वॉल्यूम 5, (4) सिम्स सी, (1992), "इंटरप्रेटिंग दि मैक्रो इकनॉमिक टाइम सीरीज़ फ़ैक्ट्स : दि इफेक्ट्स ऑफ मॉनिटरी पॉलिसी," यूरोपीयन इकनॉमिक रिव्यू, वॉल्यूम 36, (5) गैली, जे और एम गर्टलर (1999), इंप्लेशन डायनमिक्स : ए स्ट्रक्चरल इकोनोमेट्रिक अनालिसिज़, जर्नल ऑफ मॉनिटरी इकनॉमिक्स वॉल्यूम 44 (6) बलैन्चर्ड, ओ एण्ड आर पेरोटी (2002), एन एम्पिरिकल करैक्टराइज़ेशन ऑफ डायनमिक इफेक्ट्स ऑफ चेंजिज़ इन गवर्नमेंट स्पेंडिंग एण्ड टैक्सिस ऑन आउटपुट, क्वार्टरली जर्नल ऑफ इकनॉमिक्स, वॉल्यूम 117

सख्ती का नहीं हो सकता, भले ही सरकार राजकोषीय समेकन के पथ पर बने रहना जरूरी समझे। इसी तरह, भारतीय रिजर्व बैंक ने तर्क दिया कि उच्च मुद्रास्फीति के वर्ष में, ब्याज-दर में सख्ती न बरतने से बाज़ार के भागीदारों को ऐसे संकेत मिलेंगे जो हितकारी सिद्ध नहीं होंगे। सौभाग्यवश, सामूहिक विचार-विमर्श और नीति-निर्माण में सुस्पष्ट विभाजन अच्छा कार्य कर रहा है, हालांकि इस स्थिति से भी सबक लिए जा सकते हैं।

2.13 मध्य से दीर्घावधिक विकास के हित में, राजकोषीय घाटों को कम करना हमारे लिए जरूरी है। जहां बड़ा घाटा उपभोग और आर्थिक विकास को बढ़ावा दे सकता है, वहीं यह दवा एंटीबायोटिक्स की तरह काम करती है। यह बहुत कारगर होती है, यदि सही तरीके से और कम मात्रा में ली जाए, किन्तु लम्बी अवधि तक लें तो हानि हो सकती है। इसलिए, सरकार का लक्ष्य शीघ्र ही राजकोषीय समेकन किए जाने का होना चाहिए। लम्बी अवधि तक रहा भारी घाटा निजी क्षेत्र को क्रेडिट के मैदान से बाहर कर सकता है। यह निजी निवेश और उत्पादकता में मंदी लाता है, और तो और, सरकार के पास उपलब्ध मुद्रास्फीति-विकास के मिले जुले विकल्पों को कम कर देता है। यहां तक कि 1958 में किए गए एक अनुसंधान से यह देखा गया है कि जब कोई राष्ट्र मुद्रास्फीति कम करने का प्रयास करता है तो बेरोजगारी बढ़ती है और विकास दर कम होती है। बाद के अनुसंधान से इसमें कई आपत्तियां और परंतुक जुड़ गए हैं किन्तु मुख्य विचार में कोई परिवर्तन नहीं आया है। मुद्रास्फीति का सामना करते समय सरकार को पृथक-पृथक मुद्रास्फीति-विकास (अथवा मुद्रास्फीति-बेरोजगारी) जोड़ों के बीच चुनाव करना होता है। और इन जोड़ों की व्यवहार्य रूपरेखा ऐसी है कि (अल्पावधिक परिप्रेक्ष्य में) कम मुद्रास्फीति का मतलब है कम विकास और संभवतः अधिक बेरोजगारी। निरन्तर चले आ रहे बड़े राजकोषीय घाटे इस पूरी रूपरेखा को इस कदर बदल देते हैं कि उपलब्ध विकल्प कम होते जाते हैं। अब पहले की अपेक्षा मुद्रास्फीति के विशिष्ट स्तर के साथ-साथ विकास का अपेक्षाकृत कम स्तर (अथवा अधिक बेरोजगारी) रहता है। इसलिए, यदि हम मुद्रास्फीति को कम करना और जबर्दस्त विकास करना चाहते हैं तो हमारा लक्ष्य तेजी से राजकोषीय समेकन करने का होना चाहिए।

2.14 इसे हासिल किए जाने का प्रमुख तरीका है-हमारा कर-सकल घरेलू उत्पाद अनुपात बढ़ाना और फिजूलखर्ची में कमी लाना। 2011-12 में केंद्र का सकल कर-सकल घरेलू उत्पाद अनुपात (बजट अनुमान) 10.5 प्रतिशत के स्तर पर था। हमने विगत में जो हासिल किया था, उससे यह कम है और इसे बढ़ाने के सभी प्रयास किए जाने चाहिए। हमारा लक्ष्य अगली पंचवर्षीय योजनावधि के अंतिम वर्ष अर्थात् 2016-17 तक 13 प्रतिशत के स्तर को पार करने का होना चाहिए। सरकार ने यह दृष्टिकोण अपनाया है कि ऐसे राष्ट्र में जहां भंयकर गरीबी और कुपोषण हो, राज्य को अभावों के ऐसे बदतरीन रूपों को खत्म करने हेतु सीधे जिम्मेदारी लेनी होगी। हमें यह याद रखना होगा कि हालांकि विकास बहुत ही जरूरी है, फिर भी इसका महत्व मानव

विकास और गरीबी उन्मूलन के लिए एक साधन के रूप में ही निहित है। हमने वही दृष्टिकोण अपनाया है जो महात्मा गांधी हमें सिखा गए हैं कि अंततः किसी भी समाज का आकलन उसके सबसे गरीब तबके के जीवनस्तर को देखकर होना चाहिए।

2.15 समावेशन के इस महत्वपूर्ण कार्य को मुक्त बाजार के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। बाजार के स्वच्छंद नियम विकास और कार्य क्षमता में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं किन्तु इनका स्वाभाविक झुकाव गरीब और कमजोर तबके के लाभ पहुंचाना नहीं होता। यह सरकार की जिम्मेदारी ही है। इस सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए सरकार ने गरीबों को भोजन, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं जैसी बुनियादी जरूरतें मुहैया कराने की वचनबद्धता अधिदेशित की है (देखें बॉक्स 2.2)। अधिनियमित किए गए अथवा किए जाने वाले कई प्रगतिशील कानून इन सरोकारों का समाधान करते हैं। इसी के साथ यह याद रखना भी जरूरी है कि इन लाभों की सुपुर्दगी के लिए तंत्र तैयार करने में, हमें बाजार की ताकतों का इस्तेमाल करना है न कि उन्हें नजरअंदाज करना है। हमें इन सेवाओं की सुपुर्दगी के लिए निजी एजेंटों के प्रोत्साहनों को इस्तेमाल करना होगा। सरकार की भूमिका समर्थकारी की होनी चाहिए। राज्य और नौकरशाही के तंत्र का इस्तेमाल करके ये सभी लाभ सुपुर्द करने की कोशिश करने से लेनदेन लागत और भ्रष्टाचार में भारी भरकम बढ़ोतरी होगी। अच्छी आर्थिक नीति सिर्फ विकल्पों का खेल है। अपरिहार्य स्थिति के प्रति अडियल रूख अपनाना विफलता को न्यौता देने के बराबर है, जैसाकि ऑस्कर वाइल्ड ने मशहूर लेकिन शायद अप्रामाणिक कहानी में किया था, जिसमें पेरिस के सस्ते होटल में उनकी मृत्यु के कुछ क्षणों के पहले उन्होंने इस बात पर जोर दिया था कि वॉल-पेपर इतना घटिया है कि या तो उसे हटाया जाए वरना में खुद को दुनिया से हटा दूंगा।

2.16 इससे उपजने वाला एक सीधा-सादा नियम यह है कि इन अधिकांश लाभों के लिए बाजार मूल्यों में हेर-फेर न करना ही सर्वोत्तम है। लगभग हमेशा ही बाजार के कानून नीति-निर्माता पर भारी पड़ते हैं। जहां तक संभव हो, गरीबों को सीधे सशक्त बनाकर और उन्हें अपने लिए स्वयं चयन करने देकर सीधे ही लाभ दिए जाने चाहिए। उदाहरण के लिए खाद्य सब्सिडी के मामले में, सरकार की राय यह है कि वह ऐसा कानून चाहती है जो यह सुनिश्चित करेगा कि गरीब और पिछड़े वर्गों के मामले में सरकार के सीधे हस्तक्षेप और सब्सिडी देने से समस्त आबादी की भोजन की बुनियादी आवश्यकता पूरी की जाए। तथापि, सभी खाद्य पदार्थों की सरकार द्वारा अधिप्राप्ति करने और बाद में इस सब्सिडी प्राप्त खाद्यान्न को लोगों तक पहुंचाने के लिए नामित भण्डारों को देने की बजाय उद्देश्य यह है कि ऐसी प्रणाली धीरे-धीरे अपनाई जाए जहां गरीबों को सीधे सब्सिडी दी जाएगी ताकि वे इसका उपयोग बाजार से खाद्य वस्तुएं खरीदने के लिए कर सकें। आय सब्सिडी को समय-समय पर समायोजित कर लिया जाएगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उनकी मूलभूत आवश्यकता की वस्तुएं उन्हें प्रभावी रूप से कम कीमत पर उपलब्ध हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए वित्तमंत्री ने 2011 के अपने बजट भाषण

**बॉक्स 2.2 : भोजन और समावेशन**

भारत की आर्थिक नीति का केन्द्र बिन्दु समावेशी विकास हासिल करना है। हालांकि पिछले दो दशकों में विकास में हासिल सफलता को लेकर भारत की जहाँ दुनियाभर में तारीफ होती रही है, वहीं समावेशन के मोर्चे पर बहुत कुछ किया जाना बाकी है। तदनुसार, यह सरकार इसे नीति का केन्द्रीय सिद्धांत बनाने के प्रति वचनबद्ध है। ऐसा करने में इस बात के लिए आत्म आलोचना और विश्लेषण करना उपयोगी होगा कि क्यों इसके संबंध में इतनी ऊर्जा और शोर शराबा होने के बावजूद इस आयाम पर भारत का प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा है। हाल ही में प्रकाशित किए गए कुछ पेपर जिनमें खाद्य वस्तुओं के वितरण पर फोकस करके इसका विश्लेषण किया गया, इस विषय पर उपयोगी जानकारी देते हैं।

सतत् नैतिक सिद्धांत यह है कि ऐसे राष्ट्र में जो सिद्धांततः सभी को भोजन मुहैया कराने में सक्षम है, वहाँ बुनियादी भोजन को विकल्प अथवा भोगविलास का साधन नहीं अपितु अधिकार माना जाना चाहिए। भारत सरकार के नए खाद्य सुरक्षा विधेयक में यह बुनियादी नैतिक नियम निहित है और इसीलिए बहुत जरूरी है। इस विधेयक का निहितार्थ यह है कि राज्य द्वारा सभी गरीब और कमजोर वर्गों का सशक्तिकरण किया जाना चाहिए ताकि वे अपनी बुनियादी खाद्य जरूरतें पूरी करने में समर्थ हो सकें। इस पर टिप्पणी करने से पहले यह स्पष्ट करना उपयोगी होगा कि जब अर्थशास्त्री गरीबी को मापते हैं तो इसके दो बिल्कुल ही भिन्न प्रेरक कारक हो सकते हैं। पहला कारक यह देखना हो सकता है कि किस प्रकार समय बीतने पर गरीबी के स्तर में परिवर्तन हो रहा है और दूसरा कारक है लाभ पहुंचाने के लिए गरीबों की पहचान करना। समय के साथ-साथ गरीबी के स्तर का पता लगाते समय हमें गरीबी रेखा को स्थिर (रुपये के बदलते मूल्य के सुधारों के अध्यधीन) मानना होता है। यही कारण है जिसके लिए समय-अंतराल पर यह देखने के लिए उसी मानक पैमाने का इस्तेमाल किया जाता है कि ग्लोबल वार्मिंग तो नहीं हो रही है। मानक बदलने से अंतर-कालिक तुलना बिल्कुल निरर्थक हो जाएगी।

लेकिन, सब्सिडियां किसे दी जाएं, इसके निर्णय के लिए हमारे पास-गरीबी मापने हेतु विभिन्न मानकों को इस्तेमाल करने के कारण मौजूद हैं। हम ऐसे उपायों के बारे में सोच सकते हैं जो समाज के संपन्न होने और उसके द्वारा गरीबों को बेहतर सेवा प्रदान करने में सक्षम होने पर ही बदलते हैं। इस भावना की एक कसौटी है, क्विंटायल आय संबंधी पैमाना, जो इस संदर्भ में समाज का निर्धारण करता है कि आबादी का सबसे गरीब 20 प्रतिशत अथवा निचला क्विंटायल किस प्रकार जीवन-यापन करता है। हम अवश्य ही जानते हैं कि उनका हाल ठीक नहीं है ((2) में की गई चर्चा देखें)। लेकिन ज्यादा निराश करने वाली बात यह है कि जो लाभ उन्हें मिलने चाहिए, वे भी उन्हें पर्याप्त रूप से मिल नहीं पाते। 1993-94 के एनएसएस आंकड़ों का उपयोग करते हुए दत्ता और रामास्वामी ख, द्वारा किए गए अध्ययन में दर्शाया गया है कि महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश में ग्रामीण आबादी के निचले 20 प्रतिशत को उस खाद्यान्न का क्रमशः 10 प्रतिशत और 20 प्रतिशत भाग मिला जो उन्हें अधिकारपूर्वक पूरा मिलना चाहिए था। सामान्य तौर पर, कई अध्ययन (उदाहरणतः ख, और ख, यह पुष्टि करते हैं कि कमजोर वर्गों को खाद्यान्न वितरण का हमारा ट्रैक रिकॉर्ड बहुत अधिक दोषपूर्ण रहा है। स्वेडबर्ग ख, के बहुत व्यापक हालिया अध्ययनों में यह बताया गया है कि इसमें सफलता की कुंजी गरीबों के सीधे लाभ देने में है। स्वेडबर्ग का अनुमान है कि पहले पीडीएस भण्डारों को सस्ती खाद्य सामग्री मुहैया कराने की और उन्हें रखकर बाद में गरीब को देने में वर्तमान प्रणाली के जरिए एक गरीब परिवार को 1 रुपया देने के लिए सरकार 9 रुपये का बजटीय व्यय करती है। इस दर पर एक विशाल खाद्य कार्यक्रम वित्तीय रूप से अलाभकारी हो जाता है।

सौभाग्यवश, आधार के लागू हो जाने से गरीबों को नकदी का सीधे अन्तरण करना संभव हो सकेगा, जो खासकर, यदि किसी परिवार की महिला मुखिया को दिया जाए तो यह गरीबों और महिलाओं को सशक्त बना सकता है तथा इस कार्यक्रम की कमियों को तेजी से कम कर सकता है और लागत को घटा सकता है। इसका अर्थ यह है कि हम सब्सिडी लेने वाली आबादी के कवरेज को बहुत अधिक बढ़ा सकते हैं। मेक्सिको के ओपर्टुनिडेड्स और ब्राज़ील के वोल्सा फेमिलिया के नकद अन्तरण कार्यक्रमों की सफलता की कहानियां इस दलील को बल देती हैं। बेशक, हमें इस बात के लिए सजग रहना होगा कि भारत के कई क्षेत्रों में निजी बाजार न के बराबर हैं और इसलिए इन क्षेत्रों में, हमें फिलहाल पीडीएस प्रणाली के जरिए खाद्य-सामग्री वितरित किए जाने वाले तंत्र पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। दूसरी तरफ, यह कारण जानना जरूरी है कि इन क्षेत्रों में निजी बाजार क्यों नहीं हैं, वह इसलिए कि लोगों के पास पर्याप्त क्रय शक्ति नहीं है। जैसे ही हम एक बार उन्हें नकदी अन्तरित करेंगे, इन क्षेत्रों में भी निजी बाजार विकसित हो जाएंगे। सरकार की समर्थकारी भूमिका का यही अर्थ है। सरकार को ऐसा तंत्र सृजित करना चाहिए जहां यह निजी एजेंट के हित में हो कि वहां जरूरी सेवाएं मुहैया कराई जाएं (अंतहीन उलझन पैदा करने का जोखिम उठाते हुए पाठक कृपया बॉक्स 2.3 को देखें)।

संदर्भ: [1] स्वेडबर्ग पी (2011), रिफॉर्मिंग ऑर रीप्लेसिंग दि पब्लिक डिस्ट्रिब्यूशन सिस्टम विद कैश ट्रांसफर्स? इकनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली वॉल्यूम 47, 18 फरवरी [2] एस० सुब्रमणियन (2011) "इनक्लूसिव डेवलपमेंट" एण्ड "क्विंटायल इन्कम स्टेटिस्टिक", इकनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, वॉल्यूम 46, 22 जनवरी [3] हिमांशु एण्ड ए० सेन (2011) "व्हाई नॉट ए यूनिफाईड फूड स्क्रियरिटी लेजिसलेशन?" इकनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, वॉल्यूम 46 अप्रैल [4] दत्ता, बी और बी० रामास्वामी (2001), टार्गेटिंग एण्ड एफिशिएन्सी इन पब्लिक डिस्ट्रिब्यूशन सिस्टम' इकनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, वॉल्यूम 36, मई।

में अधिदेश दिया है कि एक ऐसा मंच बनाया जाए जो कोरोसिन, एलपीजी, सिलेण्डर और उर्वरकों जैसी बुनियादी वस्तुओं की सीधे सुपुर्दगी कर सके, बाद में खाद्य पदार्थों को भी इस सूची में शामिल कर लिया गया है। इसके लिए उद्देश्य यह है कि नई आधार प्रणाली (बॉक्स 2.3 देखें) को इसके लिए प्रौद्योगिकी आधारित मंच के रूप में प्रयोग किया जाए। आजकल बहुत इस्तेमाल किया जाने वाला "गेमचेन्जर" शब्द आधार प्रणाली के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है क्योंकि यह भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए गेम-चेन्जर बन सकता है।

2.17 अप्रैल 2011 से विकास में आई गिरावट की बात करें तो इसके प्रमुख कारणों को जानना उपयोगी होगा। यूरोप के दूसरी मंदी के कगार पर होने के चलते सबसे प्रमुख कारण जो सामने

आता है-वह है वैश्विक मंदी। यह मंदी जी-20 देशों की वर्ष 2011 की विभिन्न तिमाहियों के दौरान के विकास के पैटर्न पर सरसरी नजर डालने से जाहिर हो जाती है (कुछ राष्ट्रों के चौथी तिमाही के आंकड़े अभी उपलब्ध नहीं हैं; सारणी 2.1 देखें)। केवल एक ही देश ऐसा है जहां तीन तिमाहियों में एक रूप सुधार देखा गया-आस्ट्रेलिया (तीन तिमाहियों में क्रमिक वृद्धि दर 1.1, 1.9 और 2.5 रही)। दूसरी ओर, अधिकतर जी-20 देशों में विकास में एकरूप गिरावट देखी गई। भारत बाद की श्रेणी में आता है, हालांकि मंदी के बाद भी इसके विकास का स्तर कफी ऊंचा रहा। लगभग मंदी की वैश्विक स्थितियों निर्यातों में गिरावट और विदेशी संस्थागत निवेशकों (एफआईआई) से मिलने वाले निवेश-प्रवाहों में कमी तथा इसके अलावा, वित्तीय संक्रमण के

### बॉक्स 2.3 : 'आधार' की प्रगति: सरकारी सेवा की बेहतर व्यवस्था की रचना

भारतीय विशेष पहचान प्राधिकरण (यूआईडीएआई), जो योजना आयोग से सम्बद्ध है, भारत के नागरिकों को उनकी जनसांख्यिकीय और बायोमीट्रिक जानकारी से संबंधित विशेष पहचान संख्या (आधार) प्रदान करने के कार्य में लगा हुआ है। इस परियोजना का उद्देश्य एक ऐसा मंच तैयार करना है जो भारत के नागरिकों के लिए सरकारी और निजी सेवाओं की सुपुर्दगी हेतु 'पहचान अवसंरचना' के रूप में कार्य करेगा। यह आधार परियोजना विश्व की सबसे बड़ी बायोमीट्रिक कैम्प और पहचान परियोजना बनने जा रही है।

आधार में सेवाएं प्रदान करने और उनके संचालनों में सुधार लाने की बड़ी संभावनाएं हैं। सरकारी सेवा की सुपुर्दगी और सामाजिक क्षेत्र के विभिन्न महत्वपूर्ण कार्यक्रमों में इसके भावी प्रयोग इस प्रकार हैं:

**सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस):** भारत की पीडीएस 4.78 लाख उचित दर की दुकानों (एफपीएस) के नेटवर्क के साथ शायद विश्व भर में अपनी तरह की सबसे बड़ी खुदरा प्रणाली है। पीडीएस केन्द्र और राज्य सरकारों के संयुक्त दायित्व में संचालित की जाती है। आधार के उपयोग से उन लक्षित परिवारों को सीधे सब्सिडी मुहैया कराना संभव होगा जो किसी भी पीडीएस स्टोर से अथवा चाहे गैर-पीडीएस दुकानों से अपनी खाद्य-सामग्री खरीद सकेंगे। पीडीएस प्रणाली को आधार से कई प्रकार के लाभ मिलेंगे:

- **बेहतर पहचान और लाभप्रद गतिशीलता**—यूआईडी कार्यक्रम के साथ समेकन करके व्यक्तियों और परिवारों की बेहतर पहचान हो सकेगी जिससे उन्हें बेहतर ढंग से लक्षित करना संभव होगा और पारदर्शिता बढ़ेगी। इसके अलावा, कोई भी व्यक्ति जो देश के किसी अन्य भाग में जाकर बसता है, आसानी से निरंतर अपने निर्दिष्ट लाभ ले सकता है।
- **ऑफ-टेक प्रमाणीकरण**—यूआईडी डाटाबेस लाभार्थी के विवरण का ब्यौरा रखेंगे जिन्हें विविध स्रोतों के जरिए अद्यतन किया जाएगा। पीडीएस प्रणाली लाभार्थी के प्रमाणीकरण के लिए इस डाटाबेस का उपयोग कर सकती है।
- **नकली और फर्जी पहचान का पता लगाना**—यूआईडीएआई नकली और फर्जी कार्डों की छंटनी करने के लिए पीडीएस कार्यक्रम के लिए अन्वेषण अवसंरचना प्रदान करेगा।
- **पीडीएस सुधार हेतु सहयोग**—यूआईडी बैंकिंग सेवा के लिए एक महत्वपूर्ण पहचानकर्ता बन जाएगा। इससे पीडीएस के सुधार कार्यक्रम में सहयोग मिल सकता है, उदाहरण के लिए, सीधे नकदी अन्तरण के लिए एक परिवार को बैंक खाता संख्या देने में।

**महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा):** मनरेगा कार्यक्रम में यूआईडी को शामिल करने से (अध्याय 13 में वर्णित) प्रगति के मार्ग में बाधक प्रमुख चुनौतियों को दूर करने में मदद मिलेगी:

- **मजदूरी का भुगतान**—यूआईडी "अपने ग्राहक को जानें" (कंवाईसी) मानकों के संबंध में दस्तावेज प्रस्तुत करने का स्थान ले सकता है जिससे बैंक खाता खोलना बहुत सरल हो जाएगा।
- **फर्जी लाभार्थी**—जब रोजगार का दावा करने से पहले अपने रोजगार कार्ड में प्रत्येक नागरिक के लिए अपना यूआईडी प्रदान करना अपेक्षित होगा तो फर्जी और नकली लाभार्थियों की संभावना खत्म हो जाएगी।
- **लाभार्थी प्रबंधन**—यूआईडी प्रणाली उन नागरिकों के लिए मंच मुहैया कराएगी जो एक स्थान से दूसरे स्थान जाकर बस जाते हैं और बिना किसी बाधा के इस कार्यक्रम के लाभ उठाना चाहते हैं।
- **सामाजिक लेखा-परीक्षा**—यूआईडी डाटाबेस से प्रमाणित करने के बाद ग्रामीण स्तर की सामाजिक लेखा-परीक्षा समिति का चयन किया जा सकता है। ग्रामीण स्तर की समितियों द्वारा दायर की गई सामाजिक लेखा परीक्षा रिपोर्ट समिति के सदस्यों और सामाजिक समन्वयकों के बायोमीट्रिक्स विवरण द्वारा प्रमाणित की जा सकती है।

**जन स्वास्थ्य:** स्वास्थ्य और स्वास्थ्य संबंधी विकास योजनाएं यूआईडी से लाभ उठा सकती हैं। भारत में जन-स्वास्थ्य के क्षेत्र में इस संदर्भ में एक क्रान्ति देखी जा रही है (1) सरकारी और प्राथमिक स्वास्थ्य देख-भाल के सरकारी वित्तपोषण के लिए बड़ी वचनबद्धता (2) सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों (एमडीजी) को पूरा करने का दबाव (3) आगे चलकर राष्ट्रीय स्तर पर बड़े आपूर्ति प्लेटफार्मों का सृजन; जैसेकि राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम) और राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (आरएसबीवाई)।

यूआईडी के अनुप्रयोग से जन-स्वास्थ्य से जुड़े लाभ क्या होंगे? दैनिक स्वास्थ्य सूचना प्रणालियां जो विभिन्न बीमारियों के कारण रुग्णता दर और मृत्यु दर का हिसाब एवं ब्यौरा रखती हैं, जीवन-प्रत्याशा सहित जन-स्वास्थ्य में सुधार लाने के लिए बहुत महत्व रखती हैं। इस समय कभी-कभार के राष्ट्रीय और राज्य सर्वेक्षण संक्रामक बीमारियों की स्थिति के आंकड़ों का ब्यौरा रखने की महत्वपूर्ण प्रणालियां हैं। तथापि, पुरानी और जीवन-शैली के कारण उत्पन्न बीमारियों का ब्यौरा सही मायनों में इन सर्वेक्षणों में भी नहीं रखा जाता। एक एकिकृत नैत्य स्वास्थ्य प्रणाली जो विभिन्न अस्पतालों अथवा किसी अन्य चिकित्सा केंद्र के विजिट के जरिए एकत्रित रिकार्डों को नागरिकों के आईडी से जोड़कर आबादी स्तर पर बीमारियों की स्थिति का विवरण रख सकती है और पता लगा सकती है (1) चल रही विभिन्न नैत्य बीमारियों की स्थिति की जन-स्वास्थ्य प्रणाली को सूचना दे सकती है (2) अप्रत्याशित महामारियों पर कार्रवाई करने के लिए स्वास्थ्य प्रणाली को तैयार रखने में मदद करना। आंशिक उदाहरण (1) का आन्ध्र प्रदेश में राजीव आरोग्य बीमा योजना में देखा जा सकता है।

**शिक्षा:** इस समय हमारे देश में प्राथमिक शिक्षा प्रणाली स्कूल स्तर पर फर्जी नामांकन की गंभीर समस्या का सामना कर रही है। इसके कारण योजनाओं में अत्यधिक हेरा-फेरी होती है और कार्यान्वयन में गंभीर समस्याएं आ रही हैं। ये हेरा-फेरी विभिन्न क्षेत्रों में होती है जिनमें मध्याह्न भोजन, पुस्तकें, छात्रवृत्ति तथा युनिफार्म और साइकिल देने के प्रावधान शामिल हैं। यदि बच्चों को यूआईडी दिया जाए तो इससे अनेकानेक नामांकन और फर्जी नामांकनों की समस्या दूर हो जाएगी। यूआईडी की व्यवस्था से यह सुनिश्चित हो सकेगा कि देश के भीतर विद्यार्थियों को कहीं भी स्थान बदलने में कोई समस्या नहीं आएगी क्योंकि किसी को भी नए स्थान पर अपनी पहचान बताने की समस्या नहीं रहेगी। इससे प्रवासी मजदूरों के बच्चों की शिक्षा का मुद्दा प्रभावशाली तरीके से सुलझ पाएगा क्योंकि उनके बच्चों को नए स्थानों पर बिना किसी पेचीदा जांच पड़ताल के दाखिला दिया जा सकेगा। (अंतहीन उलझन का जोखिम लेते हुए पाठक बॉक्स 2.2 का सन्दर्भ लें)

सन्दर्भ (1) 'यूआईडी एण्ड पीडीएस', 'यूआईडी एण्ड एजूकेशन' 'यूआईडी एण्ड पब्लिक हेल्थ', 'यूआईडी एण्ड मनरेगा एण्ड एनलिटिक्स: एम्पावरिंग ऑपरेशन्स-दि यूआईडीएआई एक्सपेरियन्स जो वेबसाइट <http://uidai.gov.in/uidai-documents.html#publication> पर उपलब्ध है।

(2) खाउंड, डी० 'इम्पूविंग पब्लिक सर्विस डिलीवरी: बिल्डिंग ए न्यू आधार फॉर ए बिलियन प्लस', आर० मल्होत्रा (एडिटर), ए क्रिटिकल डेकेड: पॉलिसीज फॉर इंडियाज़ डेवलपमेंट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2012

कुछ-कुछ रहस्यमय तरीकों से भी भारत सीधे प्रभावित होता है जिसमें व्यापार के वित्तपोषण का खत्म हो जाना भी शामिल है, हालांकि भारत को इनमें से कुछ स्थितियों से बचाने के प्रयास जारी हैं, फिर भी ये सभी चैनल भारत के विकास को कम करने के लिए किसी न किसी स्तर पर अपना काम कर रहे थे। इनमें से कुछ पर अध्याय 7 में चर्चा की गई है।

2.18 दूसरे, मुद्रास्फीति को काबू में रखने के लिए नकदी में कमी करने के उपायों का भी असर रहा। और जैसीकि उम्मीद थी, इससे मन्दी को बढ़ावा मिला। हालांकि यह बात विवादास्पद है कि इसका ज्यादा प्रभाव हुआ होगा क्योंकि मौजूदा वैश्विक स्थिति का गड्डमड्ड कर देने वाला प्रभाव भी रहा, जब औद्योगिक राष्ट्र आर्थिक मन्दी को झेल रहे थे और इसका सामना करने के लिए नकदी सृजित कर रहे थे। लेकिन यह कहा जा सकता है कि मुद्रास्फीति-नियंत्रण से पैदा हुई मन्दी सिर्फ अस्थायी होती है। आमतौर पर जैसे-जैसे मुद्रास्फीति कम होती है, यह मन्दी भी सुधरने की स्थिति में आ जाती है।

2.19 तीसरी वजह, हालांकि इसकी मात्रा निर्धारित नहीं की जा सकती और इसलिए यह विवादास्पद भी है, वह है सुधारों की रफ्तार में आया कुछ धीमापन। देश के विभिन्न भागों में भ्रष्टाचार

### सारणी 2.1 : वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दरें

(प्रत्येक तिमाही की ये वृद्धि दरें पिछले वर्ष की उसी तिमाही की तुलना पर आधारित हैं।)

क्रम सं०	देश	2011			
		पहली तिमाही	दूसरी तिमाही	तीसरी तिमाही	चौथी तिमाही
1	ऑस्ट्रेलिया	1.1	1.9	2.5	
2	कनाडा	2.8	2.1	2.4	
3	फ्रांस	2.2	1.6	1.5	1.4
4	जर्मनी	4.6	2.9	2.7	2.0
5	इटली	1.0	0.8	0.3	-0.5
6	जापान	-0.1	-1.7	-0.6	-1.0
7	कोरिया	3.9	3.4	3.6	3.4
8	यूनाइटेड किंगडम	1.6	0.5	0.4	0.7
9	संयुक्त राज्य अमरीका	2.2	1.6	1.5	1.6
10क	यूरोपीय संघ (27)	2.4	1.7	1.4	0.9
10ख	यूरो क्षेत्र	2.4	1.6	1.3	0.7
11	ब्राज़ील	4.2	3.3	2.2	
12	रूसी परिसंघ	3.8	3.5	4.9	
13	भारत*	7.8	7.7	6.9	6.1
14	चीन*	9.7	9.5	9.1	8.9
15	दक्षिण अफ्रीका	3.7	3.3	2.9	
16	अर्जेंटीना	10.0	9.5	10.0	
17	इण्डोनेशिया	6.7	6.6	6.6	6.6
18	मेक्सिको	3.9	3.9	4.4	3.7
19	सऊदी अरब	उन	उन	उन	
20	तुर्की	11.0	8.1	8.5	

\* देशगत वेबसाइट

स्रोत: आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओईसीडी)

के भारी-भरकम घोटालों को लेकर बढ़ी हुई जागरूकता और नागरिक जमात की सराहनीय सक्रियता का एक परिणाम यह भी रहा है कि अधिकारियों द्वारा अंतिम निर्णय लेने में सतर्कता बरती जा रही है। चूंकि सही तरीके से विचार न करके या इससे भी बदतर, बदनीयती से लिए गए निर्णय के इल्जाम से बचने का एक तरीका है कि कोई निर्णय लिया ही न जाए, इसलिए यह तर्क दिया जा सकता है कि आरोपों और प्रत्यारोपों के इस मौसम में कुछ अधिकारी बिलकुल यही हथकंडा अपना रहे हैं। इसके अलावा, गठबंधन की राजनीति और संघीय सरोकारों ने कई मोर्चों पर आर्थिक सुधारों पर रोक लगाने में अपनी भूमिका निभाई। इनमें डीज़ल और एलपीजी के मूल्य निर्धारण और वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) तथा प्रत्यक्ष कर संहिता (डीटीसी) जैसे कराधान संबंधी सुधारों से लेकर खुदरा व्यापार में एफडीआई और एपीएमसी अधिनियम में सुधार शामिल हैं।

2.20 तथापि, हमें आशा है कि वर्ष 2012-13 की दूसरी तिमाही से ही विकास में जल्द ही तेजी आएगी। यह वक्तव्य मौसमी कारकों से नहीं जुड़ा है। इस बात पर जोर देना वाकई एक आम भूल होती है कि कुछ क्षेत्रों में मौसमी कारकों की वजह से विकास अधिक होता है। मौसमी कारक उत्पादन के स्तर को प्रभावित कर सकते हैं लेकिन तर्क की दृष्टि से यह लगभग असंभव है कि मौसमी कारकों से विकास अधिक हो पाता हो। यदि ऐसा होता तो भारत कुछ क्षेत्रों में तो औद्योगिक राष्ट्रों की तरह दिखाई देने लगेगा और कुछ क्षेत्रों में निर्धन अर्थव्यवस्था की स्थिति में पहुंच जाएगा। इसलिए अनुमान यह लगाया जा रहा है कि वास्तविक वृद्धि के रुझान में तेजी आएगी। पिछले दो-एक महीनों में मुद्रास्फीति के कम हो जाने और सरकार से सुधार की प्रक्रिया दोबारा शुरू करने के संकेत मिलने के चलते, यह विश्वास करने के कारण हैं कि भारत के विकास के इंजिन को चलने में अब देर नहीं। नवीनतम संकेतक जैसेकि हांगकांग और शंघाई बैंक (एचएसबीसी) के क्रय प्रबंधक सूचकांक (पीएमआई) और अधिक हालिया आईआईपी आंकड़े राष्ट्र के बदलते मिजाज की ओर इशारा करते हैं। इससे हम यह उम्मीद कर सकते हैं कि 2012-13 में विकास 2011-12 के मुकाबले अधिक होगा। जैसाकि पहले कहा जा चुका है हम 2012-13 में 7.6 (+/-0.25) प्रतिशत की दर पर विकास होने की उम्मीद कर रहे हैं। यह आशा है कि भारत की स्थिति में और सुधार होगा और राष्ट्र वस्तुतः विकास के उसी पथ पर अग्रसर होगा जिस पर वह वर्ष 2008 की मन्दी से पहले था। 2013-14 को लेकर हमारा अंकीय अनुमान 8.6 प्रतिशत है। विकास के मुख्य प्रेरक तत्व-सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में बचत और निवेश दरें-कुछ कम हो गई हैं तथा 2010-11 में क्रमशः 32.7 और 35.1 प्रतिशत के स्तर पर थीं। ये आंकड़े पिछले वर्ष से कम तो हैं लेकिन अभी भी अच्छे-खासे हैं। हमें उम्मीद है कि 2011-12 में ये आंकड़े कम हो जाएंगे और जैसे-जैसे भारत राजकोषीय मजबूती हासिल करेगा, ये वापस वृद्धि के रूख पर आ जाएंगे तथा उसके बाद जैसे-जैसे जनसांख्यिकीय लाभ के चलते समग्र आबादी के मुकाबले भारत की कार्यशील आबादी का अनुपात बढ़ेगा, इनमें निरंतर बढ़ोतरी होती रहेगी। इन



सबसे मध्य से दीर्घावधिक परिप्रेक्ष्य में जबरदस्त समग्र विकास को बढ़ावा मिलेगा। विनिर्माण क्षेत्र के निर्यातों में भी राष्ट्र की संभावनाएं बहुत बड़ी हैं जैसाकि अध्याय 7 में चर्चा की गई है। यदि इन्हें साकार करने के लिए नीतियां बनाई जाती हैं तो भारत के लिए संभव होगा कि वह अगली पंचवर्षीय योजनावधि में वैश्विक विकास के अग्रणी देश का दर्जा हासिल कर सके।

## विनिमय दर की प्रबंध व्यवस्था

2.21 पिछले दो दशकों में भारत की एक उल्लेखनीय विशेषता वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए खुलना रही है। 1900-9 के दौरान सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात के रूप में भारत का वस्तु निर्यात और आयात 18.8 प्रतिशत था; यह बढ़कर 2010-11 में 37.5 प्रतिशत हो गया। 1990-9 के दौरान, भारत का सेवा निर्यात और आयात सकल घरेलू उत्पाद का 4.1 प्रतिशत था; यह बढ़कर 2010-11 में 12.9 प्रतिशत हो गया। 1990-9 के दौरान सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात के रूप में भारत के सकल पूंजी अंतर्वाह और बहिर्वाह 15.1 प्रतिशत रहे; यह बढ़कर 2010-11 में 53.9 प्रतिशत हो गए। ये परिवर्तन वैश्विक आर्थिक मंच पर भारत के आगमन का प्रतीक हैं और यह प्रसन्नता का विषय है। लेकिन इसका अर्थ यह भी है कि हमारी नीतियां अब बाकी दुनिया की नीतियों के साथ गुंथ गई हैं। अर्थव्यवस्था का खुलना जरूरी था और इससे अर्थव्यवस्था का ऐसा जबरदस्त विकास हुआ है जो इसने 1990 के दशक से मध्य से हासिल करना शुरू किया तथा जी-20 और अन्य अंतरराष्ट्रीय निकायों के जरिए वैश्विक नीतिगत मामलों में अब इसकी अपनी एक पहचान है। लेकिन इन सबसे हम अन्य राष्ट्रों, विशेषकर व्यवस्थागत रूप से महत्वपूर्ण राष्ट्रों में हो रही घटनाओं के प्रति अधिक संवेदी हो गए हैं। एक सबसे महत्वपूर्ण मार्ग जिसके जरिए विश्व हमारी घरेलू सुव्यवस्था को प्रभावित करता है, वह है रुपये की विनिमय दर। विनिमय दर वह रास्ता है जो समूचे भारत को शेष विश्व से जोड़ता है। इसी रास्ते से वस्तुएं, सेवाएं एवं निवेश राष्ट्र में आते-जाते हैं। विनिमय दर का असर राष्ट्र के विकास और खासकर मुद्रास्फीति पर पड़ता है।

2.22 वर्ष 2011 के पिछले छः महीनों में, खासकर अगस्त की शुरुआत से, भारतीय रुपये में तेजी से मूल्य हास हुआ। यह 27 जुलाई, 2011 को 43.94 रुपये प्रति अमरीकी डालर की ऊंचाई पर पहुंच गया था और 15 दिसंबर को बहुत अधिक गिर गया जब विनिमय दर 54.23 रुपये रही। यह 19 प्रतिशत मूल्यहास के बराबर था। लेकिन इसके बाद रुपये के मूल्य ने ज़ोर पकड़ा और फरवरी 2012 के तीसरे सप्ताह तक 49 रुपये से थोड़ा सा ऊपर रहा। इन हालिया चक्कर फेरियों से पहले विनिमय दर बहुत लम्बे समय तक एक-रस सी स्थिर रहने के कारण जनता के ध्यान से हट चुकी थी। तीव्र मूल्यहास के चलते विशेषकर जब दिसंबर 2011 में यह 54 रुपये के ऊपर पहुंच गया, तब इस पर तुरंत ध्यान दिया गया। इस पर शुरू हुई सार्वजनिक बहस दर्शाती है कि यह विषय कितना विवादास्पद हो सकता है। बहुत वर्षों से भारतीय निर्यातक यह रोना रोते रहे हैं कि वे चीन जैसे राष्ट्रों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में

कठिनाई अनुभव करते हैं जो मूल्यहासित विनिमय दर रखता है। अब जब रुपये का मूल्य हास हुआ तो दूसरे पक्षों ने तीखी आलोचना की कि आयात अब अत्यधिक महंगे होते जा रहे हैं। और इसकी परिणति एक वास्तविक चिन्ता में हुई कि क्या यह मूल्य हास व्यापारित वस्तु-क्षेत्र से उपजे स्फीतिकारी दबावों को उकसा सकता है। इससे आगे चलकर नीति-निर्माता की भूमिका को लेकर सवाल उठ खड़े हुए। क्या भारतीय रिजर्व बैंक को ऐसी स्थितियों में दखल देना चाहिए और यदि हां, तो कैसे? भारतीय रिजर्व बैंक ने परंपरागत तौर पर ठीक ही यह रवैया अपनाया है कि दखल कार्रवाई विनिमय दर के स्वाभाविक रूख को बदलने के लिए नहीं बल्कि अस्थिरता को कम करने के लिए की जानी चाहिए। यह भी कहा जा सकता है कि कुछ उतार-चढ़ावों को हाथ न लगाना ही बेहतर होता है क्योंकि वे अर्थव्यवस्था के लिए शॉक-एब्सावर्ष का काम करते हैं। तथापि, विनिमय दर में सट्टेबाजी से प्रेरित उतार-चढ़ावों को ही केंद्रीय बैंक को नियंत्रित करना चाहिए। लेकिन यहां विनिमय दर के प्रबंधन की विधि पर चर्चा की जा रही है। केंद्रीय बैंक जब भी ऐसा करना चाहे तो यह सब कैसे किया जाए?

2.23 अपनी मुद्रा का मूल्य-हास करने के इच्छुक केंद्रीय बैंक अक्सर विदेशी मुद्रा खरीदने के लिए घरेलू मुद्रा को इस्तेमाल करके विदेशी मुद्रा बाजार में दखल कार्रवाई करते हैं अथवा यदि स्थिति विपरीत हो, और यदि वे अपनी मुद्रा का पुनर्मूल्यांकन करना चाहते हैं तो वे विदेशी मुद्रा भंडार बेचकर दखल कार्रवाई करते हैं। 6 सितंबर 2011 को स्विस राष्ट्रीय बैंक ने यूरो की तुलना में स्विस फ्रैंक के लिए उच्चतम सीमा की घोषणा करके और यह कहते हुए हलचल मचा दी कि वह “असीमित मात्रा में विदेशी मुद्रा खरीदने के लिए तैयार था” ताकि इस उच्चतम सीमा को बनाए रखा जा सके। केंद्रीय बैंकों द्वारा मुद्राओं का मूल्य हास करने (और कभी-कभी मूल्यवृद्धि) के लिए इसी प्रकार की दखल कार्रवाइयों की गई हैं। 15 सितंबर 2010 को विश्व को झटके महसूस हुए जब येन के तीव्र अधिमूल्यन के बाद, बैंक ऑफ जापान ने येन बेचकर डालर खरीदे। इसका तत्काल प्रभाव अमरीकी डालर के मुकाबले येन का कमजोर पड़ जाना रहा। कभी-कभी भारतीय रिजर्व बैंक ने भी विनिमय दरों के उतार-चढ़ावों को शान्त करने के लिए बहुत कुशलतापूर्वक ऐसी कार्रवाई की है।

2.24 यह कहा जा सकता है पूंजी नियंत्रणों वाले राष्ट्र में, जैसाकि भारत है, ऐसी दखल कार्रवाई भी संभव हैं जिनमें भारतीय रिजर्व बैंक को विदेशी मुद्रा खरीदने अथवा बेचने की आवश्यकता नहीं होती। वर्ष 2011 के उत्तरार्ध में जब रुपए का तेजी से मूल्यहास हुआ, तब इस आशा से कुछ पूंजी नियंत्रणों में ढील देने के उपाय किए गए थे, ताकि इससे देश में और अधिक डालरों का प्रवाह संभव हो सकेगा, जिससे डालर के मूल्य में कमी आएगी तथा उससे रुपए के मूल्य में उछाल मिलने की सम्भावना होगी। इसलिए, स्वतः अनुमोदन मार्ग के अंतर्गत पात्र कारपोरेटों हेतु मौजूदा विदेशी वाणिज्यिक उधार (ईसीबी) सीमा को 500 मिलियन अमरीकी डालर से बढ़ाकर 750 मिलियन अमरीकी डालर कर

दिया गया था। सेवा क्षेत्र के उधारकर्ताओं के लिए यह सीमा 100 मिलियन अमरीकी डालर से बढ़ाकर 200 मिलियन अमरीकी डालर कर दी गयी थी। सरकारी प्रतिभूतियों तथा कारपोरेट बाण्डों में विदेशी संस्थागत निवेश की सीमा क्रमशः 10 बिलियन अमरीकी डालर तथा 15 बिलियन डालर से बढ़ाकर क्रमशः 15 बिलियन अमरीकी डालर तथा 20 बिलियन अमरीकी डालर कर दी गई थी। इन नीतिगत परिवर्तनों पर विस्तृत चर्चा अध्याय 6 में की गयी है।

2.25 अब विनिमय दर में बदलाव लाने के लिए केन्द्रीय बैंक द्वारा स्थानीय मुद्रा का उपयोग करके विदेशी मुद्रा को खरीदने तथा बेचने के सर्वव्यापक तरीके की बात करें तो यह पता चलता है कि इसकी अपनी व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं। उदाहरणार्थ, वह बैंक जो केन्द्रीय बैंक के आदेश पर रुपए की मूल्यवृद्धि को रोकने के लिए डालर खरीदेगा, उसमें जोखिम यह है कि केन्द्रीय बैंक के आदेश का पालन करने से पहले वह फटाफट स्वयं अपने लिए कुछ डालर खरीदेगा। केन्द्रीय बैंक की बड़ी डालर-खरीद का काम एक बार पूरा हो जाने पर, डालर का मूल्य बढ़ जाएगा तथा एजेंट बैंक डालरों को बेच कर शीघ्र लाभ अर्जित कर सकता है। ऐसे कामों में फ्रंट रनिंग का हमेशा जोखिम रहता है, लेकिन यदि इसकी संभावना भी खत्म की जा सके तो बड़ी समस्या यह भी है कि ऐसी दखल कार्रवाइयों के परिणामस्वरूप विदेशी मुद्रा भंडार में बढ़ोतरी होने अथवा गिरावट होने के साथ-साथ अनुषंगी लागतें और जोखिम भी बने रहते हैं।

2.26 इसके साथ बहुत नजदीकी से जुड़ा हुआ सवाल आरक्षित भंडार के प्रति नजरिए का है। क्या भारत जैसी उभरती अर्थव्यवस्था को मुद्रा की मूल्य वृद्धि से निपटने के लिए इनका भंडार करना चाहिए अथवा मुद्रा के मूल्यहास से निपटने के लिए उसे खर्च कर देना चाहिए? दिलचस्प बात यह है कि मूल्यहास से निपटने और मूल्य वृद्धि से निपटने के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर है, जोकि रुपए के तेजी से हुए मूल्य हास के पिछले दौर में सामने आया था। मूल्यवृद्धि का मुकाबला करने के लिए डालरों को खरीदने हेतु रुपये का प्रयोग करना पड़ता है। चूंकि हम रुपए के नोटों को छापने वाली प्रेसों के स्वयं मालिक हैं, सिद्धान्ततः हम ऐसा आसानी से कर सकते हैं, हालांकि पूरी संभावना है कि आगे चलकर इसके दुष्परिणाम होंगे। लेकिन मूल्यहास से लड़ाई का अर्थ है कि बाजार से रुपए खरीदने हेतु दुर्लभ मुद्राओं के भण्डार का उपयोग किया जाए। इसमें किसी भी देश के विदेशी मुद्रा भण्डार की मात्रा के रूप में एक स्वाभाविक बाध्यता मौजूद है। तथा, वास्तव में, किसी के द्वारा उस बाध्यता तक पहुंचने से काफी पहले ही, भण्डार में तेजी से हुई कमी से सट्टेबाजी के संवेग उभारने का जोखिम भी बहुत बड़ा है। इसलिए, इस प्रश्न पर सोच-विचार करने की आवश्यकता है कि भारत जैसी अर्थव्यवस्थाओं में या कहीं तो फ्लोटिंग विनिमय दर प्रणाली वाले सारे देशों में विदेशी मुद्रा को 'कैसे' खरीदा और बेचा जाए। यह मानी गई बात है कि दखल कार्रवाई के तरीकों में भिन्नता हो सकती है तथा सच ही, विभिन्न राष्ट्रों में विभिन्न केन्द्रीय बैंकों ने भारतीय दखल कार्रवाई के विभिन्न रूपों का उपयोग किया है।

### बॉक्स 2.4 : केन्द्रीय बैंक की दखल कार्रवाई

यह बात जानी मानी है कि विभिन्न केन्द्रीय बैंकों ने (फ्लोटिंग विनिमय दरों हेतु प्रतिबद्ध राष्ट्रों के केन्द्रीय बैंक) बाजार से विदेशी मुद्रा को खरीदने तथा बेचने के अक्सर अलग-अलग रास्ते अपनाए हैं। 29 मार्च, 2011 को मेक्सिको के मुद्रा विनिमय आयोग, जिसमें केन्द्रीय बैंक तथा वित्त मंत्रालय के प्रतिनिधि होते हैं, ने यह घोषणा की कि यदि पेसो एक दिन में 2 प्रतिशत से अधिक गिरेगा तो वह अपने 140 बिलियन अमरीकी डालर के भण्डार में से 400 मिलियन अमरीकी डालर प्रतिदिन का उपयोग करेगा। यह नीति कारगर साबित हुई है तथा पहले भी मेक्सिकन प्राधिकारियों ने इस प्रकार की नीतियों का सफल प्रयोग किया था।

कुछ देशों ने अपने बहुत-से लेन-देन स्पष्ट घोषणाएं कर के किए हैं, अन्य ने कोई घोषणा किए बिना लेन-देन किए और बाद में पिछली तिथि से अपनी दखल कार्रवाई की जानकारी दी है। तुर्की ने निर्णय लिया कि जिन दिनों में केन्द्रीय बैंक की विदेशी मुद्रा बेचने की योजना हो, 11.00 बजे पूर्वाह्न में घोषित बिक्री राशि अधिकतम दैनिक राशि होगी जिसे बेचा जा सकेगा; और प्रत्येक कार्य दिवस को विदेशी मुद्रा बिक्री नीलामियों के ज़रिए अगले दो कार्यदिवसों में बेची जा सकने वाली अधिकतम राशि की घोषणा की जाने लगी। यहाँ तक कि संयुक्त राज्य अमरीका में भी, विदेशी मुद्रा बाजार में दखल कार्रवाई करने के लिए फेड ने कई बार किसी डीलिंग बैंक जैसे कि सिटीबैंक से सम्पर्क किया है और उसकी उद्धृत दर पर मुद्रा की खरीद की है। इसके अलावा फेड की बहुत सी दखल कार्रवाइयाँ और कुछ के अनुसार तो लगभग आधी कार्रवाइयाँ गुप्त तरीके से की जाती हैं।

कोई भी केन्द्रीय बैंक इस तथ्य से खास तौर पर भली भांति परिचित होता है कि बड़े निजी भागीदार केन्द्रीय बैंक से खिलवाड़ करने की कोशिश करते हैं। केन्द्रीय बैंक द्वारा अपने लाभ के लिए अनुकूल हथकंडे अपनाने की संभावना की खोजबीन नहीं की गई है। मूल बात है कि 'सशर्त या तयशुदा' दखल कार्रवाइयाँ की जाएं, जिनमें खरीद या बिक्री की मात्रा को विनिमय दर पर निर्भर रखा जाए, बिना उसके विदेशी मुद्रा भंडार को प्रभावित किए हुए। दूसरे शब्दों में, केन्द्रीय बैंक एकमुश्त खरीद या बिक्री आदेश के साथ नहीं बल्कि विनिमय दर पर निर्भर करते हुए व्यवहार करने की पूरी अनुसूची के साथ सीधे ही या अपने एजेंट बैंक के ज़रिए बाजार में प्रवेश करता है। ऐसी सशर्त दखल-कार्रवाइयों का विश्लेषण करने में खेल-सिद्धान्त संबंधी साहित्य मौजूद है। यह बात सामने आई है कि इन तयशुदा दखल कार्रवाइयों को सही ढंग से तैयार करके कोई भी देश अपने विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्धि या कमी करने का अनुचित भार उठाए बिना अपनी विनिमय दर नीति की प्रबंध-व्यवस्था कर सकता है। इस सन्तुलन से परे यह कैसे व्यवहार करेगा-उसका मात्र आश्वासन ही इसे संभव बनाता है।

यह साहित्य अभी भी काफी नया है और इन विचारों को सुरक्षित ढंग से कार्यान्वित करने से पहले आनुभविक परीक्षण एवं अनुमान तथा निरीक्षण-परीक्षण किए जाने होंगे। लेकिन जिस तरह हमने नीलामियों की लघु बुनियादों का अध्ययन करके नीलामियों के आयोजन की कला में बदलाव ला दिया है, यह संभावना है कि अगले वर्षों में विनिमय दर के प्रबंधन की कला में बहुत सुधार होंगे।

संदर्भ: [1] आउरबाख, आरडी (1982), मनी, बैंकिंग एण्ड फाइनेंशियल मार्किट्स, न्यूयार्क; मैकमिलन, [2] बासु, के (2012); 'हाऊ टू डीवैल्यू एक्सचेंज रेट्स, विदाउट बिल्डिंग अप रिजर्व्स: स्ट्रैटजिक थ्योरी फॉर सेन्ट्रल बैंकिंग,' इकनामिक्स लेटर्स, आगामी [3] दीक्षित ए. एण्ड ए.एच. स्टर्न, (1982), ओलिंगोपोलि एण्ड वेलफेयर: ए यूनिफाइड प्रेजेन्टेशन विद एप्लिकेशन्स टु ट्रेड एण्ड डेवलपमेंट: यूरोपियन इकनामिक रिव्यू, वाल्यूम 19 [4] क्लेम्पर पी, एण्ड एम मायर (1989), 'सप्लाई फंक्शन इक्विलिब्रियम इन ओलिंगोपोलि अण्डर अनसर्टेन्टि,' इकोनोमेट्रिका, वाल्यूम 57।

2.27 मिसाल के तौर पर, यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या डालरों की एक छोटी मात्रा की खरीद हेतु केन्द्रीय बैंक को कई एजेंटों को शामिल करना चाहिए अथवा किसी एक को सारी खरीद करने देनी चाहिए? क्या मौजूदा बाजार मूल्य पर खरीद कर लेने का एक साधारण अनुदेश होना चाहिए अथवा सशर्त खरीद का अनुदेश होना चाहिए: यदि विनिमय दर 'क' है तो खरीदें 'ख', यदि 'ग' है तो खरीदें 'घ' इत्यादि। यह निष्कर्ष निकलता है कि बहुत कुछ इस सूक्ष्म-संरचना पर निर्भर करता है कि खरीद अथवा बिक्री कैसे की गई? खास कर, ऐसी दखल कार्रवाई की जा सकती है जिससे भारतीय रिजर्व बैंक आरक्षित भंडार का कम अथवा संचय किए बिना विनिमय दर को प्रभावित कर सके। विनिमय दर को प्रभावित करने का निर्णय तथा आरक्षित भंडार का संचय अथवा उसे कम करने का निर्णय दो अलग उद्देश्य माने जा सकते हैं (बॉक्स 2.4 देखें)।

## वित्त और सॉवरेन की सापेक्षता

2.28 सामान्य पर्यवेक्षक के लिए वित्त के महत्त्व को न समझना आसान है। बहुत से लोगों के लिए वित्त और वित्तीय संकेतक ऊपर और नीचे होने वाले मात्र आंकड़े हैं, जबकि महत्त्व उन वास्तविक वस्तुओं और सेवाओं का है जिनका वह उपभोग करते हैं। सच तो यह है, कि हमें वास्तव में अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन उपभोग की गई वास्तविक वस्तुओं और सेवाओं तथा लोगों द्वारा हासिल किए गए जीवन-स्तर के संदर्भ में करना चाहिए। वित्त वह महत्त्वपूर्ण जरिया है जिसके माध्यम से ये उद्देश्य प्राप्त किए जाते हैं। जैसाकि हमने 2007-08 की अमरीकी सब-प्राइम समस्या से सीखा है, वित्तीय संकट जल-प्रणाली में शुरुआती रुकावट की तरह है। प्रारंभ में तो हम इसे नज़रअन्दाज़ कर सकते हैं, लेकिन जल्द ही इसके कारण हमारे नलों में पानी आना बंद हो सकता है।

2.29 हाल ही में वैश्विक वित्तीय संकट के बाद, बहुत से राष्ट्र अपनी विनियामक संरचना पर पुनः विचार कर रहे हैं। भारत इस मोर्चे पर भी कार्य करने में तेज रहा है। 2010-11 में, दो नई एजेंसियां स्थापित की गई थी—वित्तीय स्थिरता विकास परिषद (एफएसडीसी) तथा वित्तीय क्षेत्र विधायी सुधार आयोग (एफएसआरएलसी)। एफएसडीसी विभिन्न विनियामक निकायों में समन्वय स्थापित करने के लिए एक शीर्ष असाविधिक परिषद है, क्योंकि हमारी अधिकाधिक जटिल होती अर्थव्यवस्था में ऐसे मुद्दे उभरते हैं जो बहुविध वित्तीय अधिकार क्षेत्रों में फैले होते हैं और इसलिए जोखिम यह रहता है कि ये मुद्दे अंतरालों में फंसे रहेंगे अथवा अनेकानेक एजेंसियों के बीच उलझे रहेंगे। एफएसएलआरसी भविष्य में वित्तीय विनियम और विधायी संरचना की रूपरेखा बनाएगा और इसके दूरगामी परिणाम होंगे।

2.30 भारत के वित्तीय इतिहास के विकास को देखने पर, यह जाहिर होता कि भारत में इक्विटी वित्त पोषण अच्छी हालत में है। 1992 से इक्विटी बाजार नीति निर्माताओं का केन्द्र था और इसके अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं। वित्तीय गतिविधि का एक रूप, नामतः

स्टॉक उधार भारत में उपस्थित नहीं है। परंतु इसको छोड़कर, विश्व के शीर्ष इक्विटी बाजारों की अत्याधुनिक विशेषताएं अब भारत में पाई जाती हैं। दो भारतीय एक्सचेंज, नेशनल स्टॉक एक्सचेंज (एनएसई) और बाम्बे स्टॉक एक्सचेंज लेनदेन की संख्या के हिसाब विश्व रैंकिंग में क्रमशः तीसरे और पांचवें रैंक पर हैं। इन संकेतकों से संतुष्ट हुआ जा सकता है परंतु ये हमारे विनियामकों और सरकार पर बड़ा दायित्व भी डाल रहे हैं ताकि यह निश्चित किया जा सके कि ये एक्सचेंज और व्यापार की ये जीवनरेखाएं मजबूत रहें और वास्तविक अर्थव्यवस्था को अच्छा बनाने में योगदान प्रदान करती रहे। भारत बांड बाजार के विकास में गतिहीन रहा है। बैंक ऋण तथा इक्विटी पर अत्यधिक निर्भरता तथा बांड बाजार का अपेक्षाकृत कम महत्त्व हमारी अर्थव्यवस्था की विशेषता कहा जा सकता है। आखिरकार, राष्ट्रों की अपनी विलक्षणताएं होती हैं: कुछ सेवाओं पर विश्वास रखते हैं तो कुछ उद्योग पर। ऐसा प्रत्येक विशेष लक्षण नीतिगत कार्रवाई का बहाना नहीं होना चाहिए। तथापि, इसका व्यापक तौर पर तथा सलाह के रूप से तर्क दिया गया है कि बांड बाजार का विकास वित्तीय तंत्र को और अधिक आधुनिक बनाने तथा अधिक उद्यमिता संबंधी दक्षता प्राप्त करने के अलावा अवसंरचनात्मक परियोजनाओं के लिए ऋण संसाधन हासिल करने में भारत की मदद करेगा। अतः, भारत के प्रसुप्त बांड बाजार को नीतिगत प्रेरणा देने के लिए एक आधार बनता है। (बॉक्स 2.5 देखें)।

2.31 विदेशी उधार एक दिलचस्प बदलाव है जिसने भारत में बांड बाजार की अपर्याप्तता की कुछ हद तक भरपाई की है। इनमें तेजी से वृद्धि हुई है। इसका एक रोचक परिणाम यह हुआ है कि जैसे-जैसे भारत वैश्वीकृत हुआ है और अधिक से अधिक विदेशी पूंजी और निवेश देश में आ-जा रहे हैं, क्रेडिट रेटिंग एजेंसियों द्वारा दी गई रेटिंग का महत्त्व बढ़ने लगा है। सॉवरेन रेटिंग एजेंसियों के मूल्यांकनों को लेकर वैश्विक क्षेत्र में नई दाखिल होने वाली उभरती अर्थव्यवस्थाओं में संदेह, उत्साह और चिन्ता की मिली-जुली प्रतिक्रिया रही है। यहां तक कि कुछ औद्योगीकृत राष्ट्रों में भी क्रेडिट रेटिंग एजेंसियों के प्रचालनों को लेकर चिन्ता बनी रही है, खास कर जब उनकी अपनी क्रेडिट रेटिंग की दर्जावनति कर दी गई हो।

2.32 औद्योगीकृत राष्ट्रों द्वारा जारी किए गए सॉवरेन बांड बहुत समय से सुरक्षित आस्ति माने जाते रहे थे। यदि कोई प्रतिफल को लेकर बतंगड़ करने की बजाय निवेश की सुरक्षा में ज्यादा दिलचस्पी लेता है तो सॉवरेन बांड बाजार इसका बेंचमार्क था। परिणामतः यह बाजार पिछले कुछ वर्षों में अकल्पनीय रफ्तार पर बढ़ा है। बैंक ऑफ अमेरिका मेरिल लिंच ने अनुमान लगाया कि वर्ष 2001 में विश्वभर में 11 ट्रिलियन अमरीकी डालर मूल्य के सॉवरेन बांड थे। वर्ष 2011 तक ये बढ़कर 33 ट्रिलियन अमरीकी डालर के हो चुके थे। परिपक्व औद्योगीकृत राष्ट्रों के सॉवरेन बांडों को जोखिम-मुक्त प्रतिफल के अवसर के रूप में देखा जाता था, भले ही उन पर प्रतिफल बहुत कम हो। यूरो जोन में मची खलबली के चलते, इस तस्वीर में काफी नाटकीय परिवर्तन हुआ जब देखने वालों ने बांडों

**बॉक्स 2.5 : बांड और भविष्य**

शम्पेटर के अनुमान कि वित्तीय विकास वास्तविक आर्थिक वृद्धि को संभव बनाता है, के समर्थन हेतु अब व्यापक अनुभव सिद्ध अनुसंधान मौजूद हैं। वित्तीय बाजारों की मजबूती तथा विविध उत्पादों की उपलब्धता को केवल अलंकरण नहीं समझना चाहिए बल्कि इसे समावेशी विकास का महत्वपूर्ण अंग माना जाना चाहिए।

भारत में, 2000-01 में बड़ी फर्मों के वित्तपोषण में बैंकों का 14.4 प्रतिशत का हिस्सा रहा और वह बाद में बढ़कर 2010-11 17.8 प्रतिशत तक पहुंच गया। दूसरी ओर, बांड बाजार अपेक्षाकृत बहुत छोटा रहा है। बांड बाजार के छोटे होने की भरपाई काफी हद तक भारतीयों द्वारा लिए गए विदेशी उधार से हुई है, जो पिछले दशक में तेजी से बढ़ा है।

इसके अतिरिक्त, भारत प्रतिभूत उधारों की अनुपातिक राशि से जाना जाता है। अप्रतिभूत उधार का कम आकार, पहली नजर में, चिंता का विषय प्रतीत नहीं होगा, परंतु संविदा लागू करने की कमजोरी तथा पर्याप्त सूचना के अभाव का द्योतक हो सकता है। यदि संविदाओं को तेजी से लागू किया जाए और उधार दाताओं के पास उधार लेनेवालों की सूचना हो, तो वे अप्रतिभूत ऋण देने के अधिक इच्छुक होंगे। यह वित्तीय बाजार में तेजी लाएगा जो फिलहाल उनमें नहीं है।

इसके बहुत से कारण हैं कि उभरती हुई अर्थव्यवस्था के लिए बांड बाजार जरूरी हैं। इनमें सबसे प्रमुख कारण यह तथ्य है कि ये अधिक दक्ष उद्यमिता और अधिक मूल्य सृजन की ओर ले जाते हैं। जब एक उद्यमी ऋण लेता है और बांड जारी करता है, तो पूर्व निर्धारित अदायगी के अलावा सभी अतिरिक्त लाभ उद्यमी को दे दिए जाते हैं। अतः उन्हें ठोस निर्णय लेने के लिए बेहतर प्रोत्साहन मिलते हैं। कमजोर बांड बाजार के चलते, हम शायद इस दक्षता से वंचित हो रहे हैं और इसके अलावा, इस दक्षता अंतराल का यह तात्पर्य हो सकता है कि कम उधार दिए जाएं और इसलिए अर्थव्यवस्था में, व्यवहार्य से कम निवेश और उद्यमिता होगी। इसके अतिरिक्त, जैसे-जैसे भारत अवसंरचना क्षेत्र में निवेश के लिए बारहवीं योजना में निजी क्षेत्र से 500 बिलियन डालर जुटाने का प्रयास कर रहा है, तो धन जुटाने के लिए सक्रिय बांड बाजार एक महत्वपूर्ण स्रोत होगा।

इन लाभों के बावजूद, बांड बाजार का पर्याप्त विकास न होने के बहुत से कारण हो सकते हैं। एक कारण वह हो सकता है, जिसे अर्थशास्त्री बहुविध संतुलन कहते हैं। ऐसी स्थिति पर विचार करें, जहां बांड बाजार छोटा है। यदि आप बांड खरीदते हैं, और बाद में इन्हें बेचना चाहते हैं, तो आप को कठिनाई होगी। चूंकि बांड बाजार सक्रिय नहीं है, आप इस कारण से आसानी से बांड नहीं बेच सकते क्योंकि आपको खरीददार प्राप्त नहीं होंगे। अतः, आप पहले तो बांड खरीदने ही नहीं जाएंगे। यदि हर कोई इस तरह के तर्क देगा, तो बांड बाजार छोटा ही रहेगा। अतः, ऐसे प्रोत्साहन की जरूरत है जो बाजार को एक और संतुलन की ओर प्रेरित करें: जहां, लोग बांडों को तत्काल खरीदें, क्योंकि वे जानते हैं कि वे उन्हें आसानी से बेच सकते हैं और यह आत्मतुष्टि की भविष्यवाणी बन जाती है तथा बड़े बांड बाजार को सम्पोषित करती है।

इस समय भारत के ऋण और बांड बाजारों को बढ़ावा देने के प्रयास जारी हैं और इस क्षेत्र में सफलता मिलने से विकास को और प्रेरणा मिलेगी।

संदर्भ [1] राजन, आर एण्ड एल जिंगेलज़ (1998), फाइनेंशियल डिपेन्डेन्स एण्ड ग्रोथ, "अमेरिकन इकनॉमिक रिव्यू, वॉल्यूम 88 [2] बैनर्जी एस, के. गंगोपाध्याय, आई. पटनायक एण्ड ए. शाह (2012), "न्यू थिंकिंग ऑन कारपोरेट डेट इन इंडिया, "मिमियो [3] नायर, सी.के.जी. (2012), फाइनेंशियल सेक्टर रिफार्मर्स: रिफाइनिंग दि आर्किटेक्चर; आर. मल्होत्रा (एडिटर), ए क्रिटिकल डेकेड: पॉलिसीज फॉर इंडियाज डेवलपमेंट, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली में [4] भवानी, टी.ए. और एन.आर भानुमूर्ति (2012), फाइनेंशियल एक्सेस इन पोस्ट-रिफॉर्म इंडिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली चैप्टर 12 [5], बोलटन. वी एण्ड एक्स फ्रेज़ाज़, "हाऊ कैन इमर्जिंग मार्किट इकोनमीज बेनेफिट फ्रॉम ए कारपोरेट बांड मार्किट," ई. बॉर्ज़ेनस्टीन, के. कॉवैन, बी. आइशनग्रीन एण्ड यू पानीज़ा (संपादक) (2008), बॉण्ड मार्किट्स इन लैटिन अमेरिका, एमआईटी प्रेस

पर व्यंग्य से टिप्पणी की कि वे आपको "प्रतिफल रहित जोखिम" देते हैं। कुछ निजी बांड निवेशक, जिन्होंने ग्रीक सॉवरेन बांडों में निवेश किया है, अपने निवेश का लगभग 70 प्रतिशत गंवा देंगे। सॉवरेन बांडों की स्थिति में इस एक-रूप परिवर्तन का कारण अब बीते समय को देखने पर स्पष्ट होता है। यूरो जोन के राष्ट्रों की राजकोषीय घाटे उठाने की क्षमता, लेकिन अपने ही उन केंद्रीय बैंकों तक पहुंच न होना जिन्हें उन घाटों को मुद्रीकृत करने का आदेश दिया जा सके, ने निःसंदेह इसमें बहुत योगदान दिया है। लेकिन सच्चाई तो यह है कि आज सॉवरेन बांड वैश्विक अर्थशास्त्र और राजनीति के केंद्र में इस कदर पहुंच चुके हैं जैसा पहले कभी न था, और इसी के साथ क्रेडिट रेटिंग एजेंसियों द्वारा सॉवरेन बांडों की रेटिंग करने की ने भी कार्रवाई भी केंद्रीय मंच पर पहुंच गई है।

2.33 अगस्त 2011 में जब एस एण्ड पी ने संयुक्त राज्य अमरीका के दीर्घावधिक सॉवरेन क्रेडिट की स्थिति की दर्जावनति की तो विश्वभर में स्तब्धता और हैरानी छा गई। अमरीका में कुछ

राजनीतिक नेता थे जिन्होंने रेटिंग को पक्षपातपूर्ण कहकर विरोध किया। रेटिंग की इस घटना का अमरीका पर भारी असर हुआ तथा अन्य देशों पर भी अच्छा खासा अनुषंगी असर हुआ। यह परिणाम आत्मतुष्ट करने वाली भविष्यवाणी था या निवेश में निहित जोखिम का यथातथ्य वर्णन-सच्चाई यही है कि इसने विश्व भर में आर्थिक जीवन पर असर डाला। विचित्र बात तो यह है कि भारतीय रुपये में अगस्त 2011 से हुए तीव्र मूल्य हास की शुरुआत अमरीकी दर्जावनति के प्रत्यक्षतः असंबद्ध समाचार के साथ हुई। इस दर्जावनति को बाजारों ने और अधिक वैश्विक खलबली के एक संकेत के रूप में देखा। परिणामतः अनेक विदेशी संस्थागत निवेशकों ने विश्व भर से अपनी पूंजी निकाली और कैसी विडम्बना है-उसे अमरीकी राजकोष में रख दिया। इसके पीछे तर्क यह दिया गया कि भले ही राजकोषीय प्रपत्र पर उन्हें बहुत कम आमदनी हो रही हो लेकिन उन्हें यह विश्वास था कि उन्हें चूक का सामना नहीं करना पड़ेगा। इसका आगे अर्थ यह था कि अनेकानेक मुद्राओं के मुकाबले डालर का मूल्य बढ़ा और इसमें भारत भी कोई अपवाद नहीं था।

2.34 इसके बाद, अटकलबाजी और सच्ची घबराहट का दौर छा गया और रुपये का इतना मूल्यहास हुआ कि 15 दिसंबर 2011 को उसने 54 रुपये (प्रति डालर) का आंकड़ा पार कर लिया, तथा बाद में “सामान्य” स्तरों पर आया। यह समझ लेना चाहिए कि रुपये का कुछ मूल्य हास काफी सामान्य बात थी। जैसाकि पूर्ववर्ती खण्ड में कहा गया है, भारत अब पिछले दो वर्षों से उच्च मुद्रास्फीति झेल रहा है, जबकि अमरीका में मुद्रास्फीति नगण्य है। यदि सांकेतिक विनिमय दर स्थिर रहती है, तो इसका अर्थ यह होगा कि वास्तविक विनिमय दर के संदर्भ में, रुपये की मूल्य वृद्धि हो रही थी। वस्तुतः कई महीनों से ऐसा ही हो रहा था। एस एण्ड पी द्वारा संयुक्त राज्य अमरीका की दर्जावन्ति गॉल्फ की गेंद को हल्का-सा टहोका देने जैसा था जो अपनी गतिहीनता छोड़कर अपने अधिक स्वाभाविक स्थान पर जा पहुंचती है। यह सच है कि विनिमय दर में असामान्य मूल्य हास हुआ था लेकिन बाद में हुए आंशिक सुधार का अर्थ है कि यह अब अधिक यथार्थवादी स्तर पर है।

2.35 सॉवरेन रेटिंग का बढ़ता महत्व एक स्वाभाविक सवाल उठाता है: भारत का प्रदर्शन कैसा रहा है? एक स्तर पर तो प्रमुख रेटिंग एजेंसियों की वेबसाइटों को देखकर जवाब ढूंढना आसान हो जाता है। लेकिन यह सवाल इसी से जुड़े अधिक दिलचस्प सवाल को भी उठाता है जिसका जवाब आसानी से नहीं मिलता। अधिकतर क्रेडिट रेटिंग एजेंसियां प्रत्येक राष्ट्र की सॉवरेन क्रेडिट रेटिंग को एक पूर्ण ग्रेड के रूप में निर्धारित करती हैं। अन्य राष्ट्रों का क्या प्रदर्शन रहा, इस बात का किसी राष्ट्र विशेष के रेटिंग स्कोर में कोई महत्व नहीं। यह “तुलनात्मक” रेटिंग से बहुत भिन्न है जो “अन्य” के संदर्भ में राष्ट्र के प्रदर्शन का विवरण होता है। सॉवरेन का मूल्यांकन करते समय, तुलनात्मक रेटिंग वाकई महत्वपूर्ण है। आखिरकार, यदि दूसरे राष्ट्र अपनी रेटिंग गिरती देखें तो इस राष्ट्र ने अच्छा प्रदर्शन किया है, भले ही इसकी पूर्ण रेटिंग अपरिवर्तित रही हो। तुलनात्मक रेटिंग में यह बात शामिल होती है। जब कोई निवेशक अपने पैसों का निवेश करने के लिए विभिन्न राष्ट्रों की हालत देखता है तो तुलनात्मक रेटिंग जरूरी होती है। यदि राष्ट्र “क” की पूर्ण रेटिंग अपरिवर्तित है, लेकिन अन्य सभी राष्ट्रों की रेटिंग बढ़ रही है, तो राष्ट्र ‘क’ की तुलनात्मक रेटिंग कम हो जाएगी; और निवेशक के पास पूरी-पूरी वजह होगी कि उस राष्ट्र से अपना कुछ निवेश हटा ले।

2.36 चूंकि कुछ निवेशकों के लिए, सापेक्ष या तुलनात्मक रेटिंग इतनी महत्वपूर्ण संकल्पना है कि यह महसूस किया गया कि एक ऐसा नया सूचकांक तैयार किया जाए जिसमें इस विचार को शामिल किया गया हो। तदनुसार, वित्त मंत्रालय के अनुसंधानकर्ताओं ने “सॉवरेन हेतु तुलनात्मक रेटिंग सूचकांक” अथवा संक्षेप में ‘क्रिस’ नामक नया सूचकांक तैयार किया है। पिछले कुछ वर्षों में वैश्विक अर्थव्यवस्था में बहुत से उतार-चढ़ाव हुए हैं और राष्ट्र रेटिंग की सीढ़ियों पर गिरते-चढ़ते रहे हैं। इसलिए यह पूर्णतः संभव है कि कोई राष्ट्र विशेष जिसका छोटा सा रेटिंग परिवर्तन हुआ हो, अब क्रिस के संदर्भ में बेहतर या बदतर स्थिति में हो, और क्रिस की घट-बढ़ मानक रेटिंग परिवर्तन से अलग किसी और दिशा में

हो। पूर्ण अर्थ में रेटिंग की सीढ़ी में नीचे आने वाला राष्ट्र, तुलनात्मक संदर्भ में बेहतर स्थिति में हो सकता है क्योंकि अन्य राष्ट्रों का प्रदर्शन और भी खराब रहा है। राष्ट्रों ने क्रिस के संदर्भ में पिछले छः वर्षों में कैसा प्रदर्शन किया है? बॉक्स 2.6 में इस विचार का खुलासा किया गया है और इसमें इस संबंध में सारणीबद्ध जानकारी दी गई है कि इस पैमाने से राष्ट्रों का चयन कैसे किया जाता है।

2.37 यह उल्लेखनीय है कि भारत के क्रिस में बढ़ोतरी देखी गई है जो 2007 के 23.81 से बढ़कर 2012 में 24.5 हो गई। चूंकि क्रिस तुलनात्मक रेटिंग स्कोर है, इसका अर्थ यह है कि शेष विश्व की तुलना में भारत की रेटिंग में 2.98 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जिस रूप में क्रिस की रचना हुई, उसके अनुसार विश्व का औसत क्रिस स्कोर हमेशा स्थिर रहेगा। इसलिए यह कोई मामूली वृद्धि नहीं। आश्चर्य नहीं कि पिछले छः साल में यूनान, पुर्तगाल, आइसलैंड और कई अन्य राष्ट्रों के क्रिस में तेजी से गिरावट देखी गई है। दूसरी ओर, कई उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए क्रिस में वृद्धि हो रही है।

2.38 विश्व भर के क्रिस स्कोर की बदलती रूपरेखा हमें विश्व-अर्थव्यवस्था की बदलती तस्वीर की कहानी कहती है जिसमें उभरती अर्थव्यवस्थाएं केंद्र में आ रही हैं और वैश्विक अर्थव्यवस्था की प्रेरक-शक्ति बन रही है। जाहिर है, सभी उभरती अर्थव्यवस्थाएं उस स्थान को ग्रहण नहीं करेंगी। बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगा कि इस अवसर को हथियाने के लिए राष्ट्र कितना तैयार है। अच्छी राजकोषीय, मौद्रिक नीति और कार्यक्षमता से जुड़ी छोटी-बड़ी बातों का महत्व है; उत्कृष्ट अभिशासन का विकास और संस्थाओं को प्रोत्साहित करने के सामर्थ्य का महत्व होगा। भारत ने, पिछले वर्ष की मन्दी के बावजूद, पिछले दो दशकों से विशेषकर वर्ष 2005 से उल्लेखनीय निष्पादन किया है और मध्य से दीर्घावधिक परिप्रेक्ष्य में भारत के लिए संभावनाएं उज्ज्वल दिखाई दे रही हैं। तथापि, राष्ट्रों के इतिवृत्त की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। भारत में सुधारों एवं राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के ज़रिए, अभिशासन की संरचनाओं में सुधार लाकर, भ्रष्टाचार पर काबू पाकर और अवसंरचना का विकास करके अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। इनमें से कई विषयों पर अगले खण्डों में और अगले अध्यायों में भी चर्चा की गई है।

## अवसंरचना, वित्त और राजकोषीय विवेक

2.39 एक उभरती अर्थव्यवस्था के लिए निवेश विकास का आधार है। भारत परंपरा से एक ऐसा राष्ट्र रहा है जिसने पूर्व में न के बराबर बचत की और न ही निवेश किया, अब इसने सौभाग्य से अपने आपको एक बड़े निवेशक और बचतकर्ता के रूप में परिवर्तित कर लिया है। सकल बचत दर (अर्थात् स०घ०उ० के प्रतिशत के रूप में) ने वर्ष 2004 में 30 प्रतिशत के आंकड़े को पार कर लिया था और तब से पीछे मुड़कर नहीं देखा है। भारत की बचत और निवेश दरें इस समय बहुत कुछ वैसी दिखाई रही हैं जैसीकि 1970 और 1980 के दशक के दौरान, पूर्वी एशिया तीव्र

## बाक्स 2.6 : क्रिस

स्टैंडर्ड सॉवरेन क्रेडिट रेटिंग एक ऐसा विवरण होता है जिसमें यह सूचना निहित होती है कि राष्ट्र का क्रेडिट कितना सुरक्षित और लाभकर है, बिना किसी ऐसे विवरण के कि इस आयाम पर अन्य राष्ट्रों का क्या रवैया है। लेकिन, निवेशकों के लिए अक्सर इस बात को जानने का महत्त्व होता है कि राष्ट्र 'तुलनात्मक' संदर्भ में कहाँ पर है। तदनुसार, एक नया सूचकांक तैयार किया गया है जिसे "सॉवरेन हेतु तुलनात्मक रेटिंग सूचकांक [कम्पैरेटिव रेटिंग इन्डेक्स फॉर सॉवरेन्ज़ (क्रिस)]" कहा जाता है। क्रिस की व्युत्पत्ति प्रकाशित होने वाले एक पेपर में उपलब्ध है (देखें [1])। पिछले कुछ महीनों में विभिन्न कार्यात्मक रूपों के साथ परीक्षण किए गए, लेकिन अनुसंधान दल ने अब एक पैमाना तय कर लिया है जिसमें अनेक आकर्षक विशेषताएँ हैं।

क्रिस का यथातथ्य गणितीय फार्मूला और इसीलिए पेपर [1] गोपनीय है। लेकिन इसका मूल्य आधार-विचार आसानी से समझाया जा सकता है। यह पहले स्पष्ट किया जाना चाहिए कि इसका परिकलन सिर्फ विभिन्न राष्ट्रों की स्टैंडर्ड रेटिंग के आंकड़ों और सकल घरेलू उत्पाद संबंधी आंकड़ों पर आधारित है ताकि विभिन्न राष्ट्रों के महत्व या भारांश का निर्धारण किया जा सके। अनेक कारणों से अनुसंधानकर्ताओं ने मूडीज़ की विदेशी मुद्रा क्रेडिट रेटिंग और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के जीडीपी आंकड़ों का चयन किया तथा इसमें क्रय शक्ति समता (पीपीपी) का कोई सुधार शामिल नहीं है। प्रत्येक राष्ट्र के क्रिस को इन दो आंकड़ों का प्रयोग करके तैयार किया जाता है।

क्रिस की महत्वपूर्ण गणितीय विशेषताओं में निम्नलिखित है (1) यदि राष्ट्र 'ख' की सॉवरेन क्रेडिट रेटिंग स्थिर है और अन्य सभी राष्ट्रों की मूडीज़ रेटिंग में बढ़ोतरी होती है तो उस राष्ट्र 'ख' के क्रिस में गिरावट होगी (2) सभी राष्ट्रों के क्रिस का भारत औसत स्थिर है। इसलिए किसी एक राष्ट्र के क्रिस में सुधार के साथ-साथ कुछ अन्य देशों या देश का क्रिस बिगड़ता है। (3) क्रिस इस प्रकार तैयार किया गया है कि ह्रासमान सीमान्तिक प्रतिफल को पूर्ण रेटिंग में हुए सुधार के साथ जोड़ा जाए।

योजना यह है कि फार्मूले को इस्तेमाल करके नियमित अंतरालों पर राष्ट्रों को क्रिस स्कोर दिए जाएँ ताकि निवेशकों की बेहतर निर्णय लेने में मदद की जा सके और बदले में, राष्ट्र स्वयं का कारण ढंग से मूल्यांकन करें। पेपर [1] में क्रिस को औपचारिक रूप से परिभाषित किया गया है और समय विशेष के अंतराल पर 101 राष्ट्रों की रूपरेखा की सूचना दी गई है। इस पेपर में से कुछ चुनिंदा राष्ट्रों के क्रिस स्कोर सारणी 1 में दिए गए हैं।

सारणी 1: वर्ष 2007 से 2012 तक चुनिंदा राष्ट्रों के क्रिस स्कोर प्रतिशत परिवर्तन के साथ

	2007	2008	2009	2010	2011	2012	2007 से 2012 तक % परिवर्तन
पराग्वे	14.36	16.13	16.16	19.19	19.48	19.56	36.23
इण्डोनेशिया	20.31	20.40	21.68	21.76	23.29	24.52	20.75
फिलीपीन्स	18.99	19.54	20.44	20.52	22.09	22.18	16.77
ब्राज़ील	22.70	22.81	24.33	24.42	25.86	25.96	14.37
तुर्की	20.31	20.40	20.86	22.16	22.50	22.59	11.23
चिली	27.80	27.94	29.21	29.91	30.36	30.48	9.63
चीन	28.72	28.86	29.21	30.20	30.66	30.78	7.19
रूस	24.87	26.01	26.06	26.16	26.55	26.66	7.19
कोरिया	27.80	27.94	27.99	29.02	29.46	29.57	6.36
ओमान	27.80	27.94	27.99	29.02	29.46	29.57	6.36
इज़राइल	28.11	28.86	28.91	29.02	29.46	29.57	5.19
सऊदी अरब	29.01	29.15	29.21	29.91	30.36	30.48	5.06
दक्षिण अफ्रीका	26.21	26.34	27.04	27.14	27.23	27.33	4.26
भारत	23.81	23.93	24.33	24.42	24.43	24.52	2.98
मेक्सिको	25.88	26.01	26.06	26.16	26.55	26.66	2.98
ऑस्ट्रेलिया	32.11	32.26	32.32	32.44	32.93	33.06	2.98
कनाडा	32.11	32.26	32.32	32.44	32.93	33.06	2.98
जर्मनी	32.11	32.26	32.32	32.44	32.93	33.06	2.98
मलेशिया	26.86	26.99	27.04	27.14	27.56	27.66	2.98
फ्रांस	32.11	32.26	32.32	32.44	32.93	32.79	2.12
यूनाइटेड किंगडम	32.11	32.26	32.32	32.44	32.93	32.79	2.12
संयुक्त राज्य अमरीका	32.11	32.26	32.32	32.44	32.66	32.79	2.12
बोट्सवाना	28.11	28.25	27.99	27.78	28.52	28.63	1.85
अर्जेंटीना	16.58	16.13	16.16	16.22	16.47	16.53	-0.29
ट्यूनीशिया	24.87	24.99	25.04	25.13	24.05	24.15	-2.91
लिथुआनिया	27.80	27.63	25.72	26.16	26.55	26.66	-4.13
बेल्जियम	31.57	31.72	31.50	31.62	32.10	30.18	-4.39
जापान	32.11	32.26	30.66	30.78	30.36	30.48	-5.06
स्लोवेनिया	30.74	30.89	30.66	30.78	30.36	28.31	-7.89
वियतनाम	20.72	19.97	20.01	18.73	19.02	19.09	-7.89
यूक्रेन	19.44	19.54	17.20	17.77	18.04	17.60	-9.48
लात्विया	27.80	26.67	23.60	24.06	24.79	24.89	-10.49
पाकिस्तान	18.54	15.58	16.16	16.22	16.47	16.53	-10.82
स्पेन	32.11	32.26	32.32	31.62	29.15	27.33	-14.87
हंगरी	27.80	26.67	25.72	26.16	24.05	22.99	-17.33
मिस्र	22.32	22.43	22.85	22.94	19.02	18.11	-18.87
आइसलैंड	32.11	25.67	23.97	23.69	24.05	24.15	-24.79
आयरलैंड	32.11	32.26	31.23	25.82	22.90	22.99	-28.41
पुर्तगाल	30.46	30.61	30.38	29.02	21.68	20.47	-32.79
यूनान	29.01	29.15	27.68	22.94	7.36	7.39	-74.52

टिप्पणी : मूडीज़ के दीर्घावधिक विदेशी मुद्रा सॉवरेन रेटिंग आंकड़े 13 फरवरी 2012 तक अद्यतन किए गए हैं।

यदि हम 101 राष्ट्रों के सम्पूर्ण चार्ट का उपयोग करें तो पाते हैं कि 2007 से 2012 तक क्रिस में सर्वाधिक वृद्धि वाले देशों में उरुग्वे (25.12 प्रतिशत) बोलिविया (24.72 प्रतिशत), इण्डोनेशिया (20.75 प्रतिशत) फिलिपीन्स (16.77 प्रतिशत), पेरू (15.56 प्रतिशत) और ब्राजील 14.37 प्रतिशत) हैं। इन परिणामों की व्याख्या करते समय हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि जिन देशों के क्रिस मूल्य कम हैं, उनमें आगे सुधार की गुंजाइश ज्यादा है। साथ ही, कुछ अध्ययन हुए हैं जो यह दर्शाते हैं कि प्रति व्यक्ति आय वाले देशों में साँवरेन रेटिंग कम देखी गई है। इसलिए, इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि सर्वाधिक सफल देशों की सूची में कुछ ही देश धनी हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि भारत की प्रति व्यक्ति आय कम है, भारत का साँवरेन रेटिंग निष्पादन, इसका स्तर और यह तथ्य कि पिछले छः वर्षों में इसके क्रिस में बढ़ोतरी हुई है, प्रभावशाली है।

यह जानना दिलचस्प है कि इस छः वर्ष की अवधि में, जहां अमरीका पहले स्थान से खिसक कर तेरहवें स्थान पर आ गया, वहीं इसके क्रिस में बढ़ोतरी हुई। इसका सरल सा अर्थ यही है कि जो राष्ट्र इससे निचले स्थान पर रहे हैं, उन्होंने रेटिंग के सन्दर्भ में अमरीका के मुकाबले खराब निष्पादन किया है जिससे अमरीका की तुलनात्मक स्थिति बेहतर हुई। छः वर्षों की इस अवधि में भारत के क्रिस में लगातार वृद्धि हुई है। कई यूरोपीय राष्ट्रों में 2007-2008 तक क्रिस में वृद्धि हुई; तत्पश्चात, इसमें गिरावट आई।

उन 101 देशों में से जिन्हें हम ट्रैक कर रहे हैं, सताईस अर्थव्यवस्थाओं के पूरी अवधि के दौरान क्रिस में ऋणात्मक वृद्धि देखी गई। दस सर्वाधिक गिरावट वाले देश हैं यूनान (-74.52 प्रतिशत), पुर्तगाल (-32.79 प्रतिशत), आयरलैण्ड (-28.41 प्रतिशत), आइसलैण्ड (-24.79 प्रतिशत), मिस्र (-18.87 प्रतिशत), हंगरी (-17.33 प्रतिशत) और स्पेन (-14.87 प्रतिशत)।

सन्दर्भ [1] बासु. के., ए. बिसेन; एस०डे, आर० घोष और श्वेता, दि रिलेटिविटी ऑफ साँवरेन : ए न्यू इन्डेक्स ऑफ साँवरेन क्रेडिट रेटिंग्स एण्ड एन एनालिस आफ हाऊ नेशन्स फेयर्ड ओवर दि लास्ट सिक्स यीयर्स; आर्थिक प्रभाग, आर्थिक कार्य विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार,—उपलब्धता प्रतिबंधित (2) फेरी, जी०, एल० जी लियू, और जे०ई स्टिगलिट्ज़ (1999), दि प्रो-साइक्लिकल रोल ऑफ रेटिंग एजेंसीज; एविडेन्स फ्रॉम दि ईस्ट एशियन क्राइसिस, इकनॉमिक नोट्स बा-य बांका मोन्टे देइ पस्वी सिएना, वाल्यूम 28 (3) दादुश, यू० एण्ड डी० दासगुप्ता (2011), दि बेनेफिट्स एण्ड रिस्क्स ऑफ कॅपिटल अकाउण्ट ओपनिंग इन डेवलपिंग कन्ट्रीज, कॅपिटल फ्लोज विदाउट क्राइसिस, राउटलेज, लंदन।

विकास के दिनों में दिखाई देती थीं। वर्ष 2010-11 में भारत ने अपने स०घ०उ० के 35.1 प्रतिशत का निवेश किया और 32.3 प्रतिशत की बचत की। यह बड़ा पूंजी निर्माण और अधिक प्रभावशाली होता, यदि इसका बड़ा हिस्सा अवसंरचना में लगाया जाता। वर्ष 2006 और 2011 के बीच, अवसंरचना क्षेत्र को प्राप्त निवल बैंक ऋणों में 48.4 प्रतिशत की अच्छी वार्षिक वृद्धि देखी गई, हालांकि अप्रैल 2011 से कुछ मंदी रही। लेकिन इसके साथ भी इस क्षेत्र में निवेश करने की ज़रूरत आज भी है। इसलिए इस मोड़ पर भारत के सामने एक गंभीर सवाल यह है कि अवसंरचनागत निवेश में कैसे वृद्धि की जाए? इस बात को स्वीकारते हुए कि यह ईट-गारे का नहीं बल्कि वित्त पोषण का मामला है, भारतीय योजना आयोग ने बारहवीं पंचवर्षीय योजना, 2012-17 के दौरान एक ट्रिलियन डालर के अवसंरचनागत निवेश-लक्ष्य की बात कही है; जिसमें से आधे से अधिक राशि निजी क्षेत्र से जुटाई जाएगी (और चर्चा के लिए अध्याय 11 देखें)। यह काम आसान नहीं होगा। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान, अवसंरचनागत व्यय का 36 प्रतिशत निजी क्षेत्र से आने का अनुमान है।

2.40 पूंजी और अवसंरचना का निर्माण बहुत हद तक इस बात पर निर्भर करेगा कि सरकार क्या करती है और क्या नहीं करती। अंतरण वित्तपोषण के संदर्भ में और अवसंरचना ऋण निधि के रूप में कुछ उपाय किए गए हैं। कई ऐसे क्षेत्र हैं जहां वास्तव में सरकार को निजी भागीदारों के लिए समर्थकारी माहौल सृजित करना होगा। उसे धन खर्च करने की ज़रूरत नहीं बल्कि ऐसा करने के लिए निजी एजेंटों की सहायता करनी होगी। मानव पूंजी और अनुसंधान इसका एक उदाहरण है। उच्च शिक्षा के इतिहास के साथ भारत इसमें लाभ की स्थिति में है। इसके पास वैश्विक शिक्षा का बड़ा केन्द्र बनने की क्षमता है। कई औद्योगिक देशों में शिक्षा बहुत महंगी है, जबकि भारत में यह संभव है कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जाए, इसमें आने वाली लागत की वसूली की जाए,

मार्जिन रखा जाए और फिर भी विद्यार्थी आएंगे। सृजित अधिशेष हमारे अपने सकल नामांकन अनुपात को बढ़ाने के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। विश्व को उच्च शिक्षा प्रदान करने से राष्ट्र की वैश्विक छवि में निखार आएगा। चूंकि यह वित्तीय दृष्टि से सक्षम प्रचालन है, इसलिए सरकार को सिर्फ यह करना होगा कि शिक्षण संस्थाओं को स्वायत्तता देनी होगी जिसमें फीस और वेतन के संदर्भ में स्वायत्तता भी शामिल है, और फिर निजी निवेश को भी इस क्षेत्र में प्रवेश की अनुमति देनी होगी। इसे विदेशी विद्यार्थियों को एक बार में ही चार वर्ष का वीजा दिलवाने की व्यवस्था करने जैसे छोटे-बड़े उपाय भी करने होंगे। बेशक, इसके लिए विनियामक व्यवस्था होगी जिसके अन्तर्गत यह कार्य करेगा ताकि विद्यार्थियों को गलत जानकारी न दी जाए अथवा ठगा न जाए और उन्हें पाठ्यक्रम के मध्य में फीस में बढ़ोतरी का सामना न करना पड़े। मूलतः, यह एक संसाधन की तरह है जो इस्तेमाल हुए बिना ज़मीन में गड़ा पड़ा है। उपयुक्त समर्थकारी नियमों के साथ, हम बड़े प्रतिफल सृजित कर सकते हैं और अपने उच्च शिक्षा और अनुसंधान क्षेत्र को बढ़ावा दे सकते हैं।

2.41 वापस अवसंरचना के विषय पर लौटते हैं, इसमें एक समस्या यह आती है कि ये ज्यादातर बड़ी परियोजनाएं होती हैं और इनके वित्तीय रूप से अर्थक्षम बनने से पहले इनकी लंबी निर्माण-अवधि भी होती है। अधिकतर उद्यमियों को उद्यम शुरू करने से पहले मध्यस्थ उद्यमी और संयुक्त पूंजीपति जैसे एजेंटों को खोजना होगा जो धन लगाना चाहेंगे। क्या सरकार को इन उद्यमों में निजी क्षेत्र के धन को लगाने और इसे बढ़ावा देने में शामिल होना चाहिए अथवा क्या हाथ खड़े कर देने वाली नीति का अनुकरण करना चाहिए? क्या सरकार को उन निवेशकों को गारण्टी अथवा सान्त्वना पत्र देना चाहिए जो यह तय करने का प्रयास कर रहे हैं कि वे अवसंरचना क्षेत्र में अपना धन लगाए या नहीं। यह सर्वविदित है कि ऐसी गारण्टियां निवेशकों को आश्वासन

देकर निवेश को बहुत सुसाध्य बनाती हैं, लेकिन वे सरकार पर यह जिम्मेदारी भी डालती हैं क्योंकि यदि इसमें चूक होगी, तो दखल देना सरकार का दायित्व होगा। यह एक ऐसा विषय है जिस पर अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भारी बहस होती रही है। चूँकि भारत बड़ी अवसंरचना परियोजनाएं शुरू करने के कगार पर खड़ा है, इसलिए यह बहस अब हमारे दरवाज़े पर आ खड़ी हुई है। इससे मुंह फेर लेने का अर्थ है परंपरा से चले आ रहे ग़लत निर्णय लेना।

2.42 बड़ी निवेश परियोजनाएं शुरू करने की कोशिश करते समय, गैर-जिम्मेदार सरकारें अक्सर निवेशकों को कुछ ऐसी गारंटियां देती थीं जो असल में इस बात पर ज़ोर देती थीं कि परियोजना के दीवालिया हो जाने की स्थिति में सरकार निवेशक को भुगतान कर देगी। अनुभव बताता है कि जब कोई सरकार (मुद्रा छापने की क्षमता वाली) गारंटी देती है तो परियोजनाओं में अपना पैसा लगाने वाले निवेशकों की भरमार हो जाती है। लेकिन हमें यह मालूम हो चुका है कि यह सरकारों के लिए अच्छी कार्यनीति नहीं है। ऐसी गारंटी देने से शायद सरकार के राजकोषीय गणित पर तत्काल कोई असर नहीं होगा लेकिन इसका अर्थ है भावी राजकोषीय व्यय। चूँकि यह संभावना हमेशा रहती है कि ऐसी गारंटीशुदा परियोजना भविष्य में असफल हो जाएगी, ऐसी प्रत्येक

गारंटी का अर्थ है भविष्य में सरकार द्वारा किए जाने वाला कतिपय अतिरिक्त अनुमानित व्यय। इसलिए अन्धाधुन्ध दी गई ऐसी गारंटियों का परिणाम भविष्य में होने वाला अवहनीय राजकोषीय घाटा हो सकता है जिसकी अनुषंगी समस्याएं भी होती हैं, जैसेकि मुद्रास्फीति, निवेशों का ठप्प हो जाना और आखिरकार आर्थिक मन्दी। इसी वजह से राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन अधिनियम 2003 में ठीक ही भारत पर ऐसी गारंटियों पर प्रतिबंध लगाए गए हैं।

2.43 इसके अलावा, सरकारों को राजकोषीय मानकों के अंतरराष्ट्रीय निकायों द्वारा बार-बार चेतावनी दी गई है कि वे निवेशकों को, विशेषकर निजी क्षेत्र के उपक्रमों को गारंटियां न दें। हालांकि यह चेतावनी तर्कसंगत है और सरकारों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए, लेकिन ऐसी परिस्थितियां भी होती हैं जब सरकार से कुछ नीतिगत और सुविचारित गारंटियां या सान्त्वना पत्र राष्ट्र के समूच हित में वांछनीय होते हैं। ऐसा विकास के लिए तैयार और अनेक अवसंरचना परियोजनाओं के विस्तार का विचार कर रहे गतिशील राष्ट्र में हो सकता है। इसलिए, यह ऐसी दलील है जो भारत के लिए बिलकुल प्रासंगिक है। इस दलील का सार आश्चर्यजनक रूप से सरल है और बाक्स 2.7 में दिया गया है।

### बॉक्स 2.7 : समन्वय करके बेहतर निष्पादन

अवसंरचना परियोजनाओं पर खासतौर पर बहुत से सकारात्मक बाहरी प्रभाव पड़ते हैं। टोल प्रणाली से चलाई जाने वाली नई सड़क के सफल होने की संभावना तब अधिक होती है जब सड़क के किनारे आवासीय टाउनशिप बस जाए; और डेवलपर द्वारा विचारे जा रहे आवासीय टाउनशिप के सफल होने की संभावना तब अधिक होती है जब सड़क का निर्माण हो जाए [देखें (1) और (2)]। सरकार, निवेशकों को सावधानीपूर्वक तैयार की गई गारंटियां देकर यह सुनिश्चित कर सकती है कि इन सभी परियोजनाओं की शुरुआत हो और इस तरह, ऐसी प्रत्येक परियोजना की सफलता की संभावना बढ़ा सकती है। और सच तो यह है, यदि वे सभी असफल हो जाती हैं तो यह अधिक भारी असफलता होगी। लेकिन यही तो धर्मसंकट है और यह दिखावा करना कि कोई धर्मसंकट नहीं है तथा सिर्फ आदतन किसी एक विकल्प के साथ बंधा रहना कतई कोई समाधान नहीं है।

इसे गणितीय उदाहरण के साथ समझते हैं—मान लीजिए, तीन परियोजनाएं हैं—सड़क, टाउनशिप और विद्युत परियोजना से जुड़ी हुई। प्रत्येक की आरंभिक लागत 100 है। यदि परियोजना सफल होती है तो आमदनी 150 होगी; यदि असफल रहती है तो पूरी आरंभिक लागत की वसूली नहीं होगी। यदि तीनों परियोजनाएं शुरू की जाती हैं तो पहले उल्लिखित सकारात्मक बाहरी प्रभाव के कारण प्रत्येक परियोजना के सफल होने की संभावना अधिक है; चलिए यह मान लेते हैं कि प्रत्येक परियोजना की सफलता की संभाव्यता, जब अन्य दो परियोजनाओं को कार्यान्वित किया जा रहा है, 0.95 है। दूसरी ओर, यदि अन्य दो परियोजनाओं को कार्यान्वित नहीं किया जाता, तो यह मान लें कि जो परियोजना कार्यान्वित की जा रही है, उसकी सफलता की संभाव्यता 0.5 के बराबर है। यदि सरकार निवेशक को परियोजना के लिए गारंटी देती है तो परियोजना में निवेश करना निवेशक के लिए लाभप्रद होगा क्योंकि उसे चूक का कोई जोखिम नहीं उठाना है। चूक होने की स्थिति में सरकार निवेशक को उसके उस 100 की अदायगी कर देती है जो उसने निवेश किए थे।

मान लीजिए अब सरकार केवल एक परियोजना के लिए गारंटी देती है। यह मानते हुए कि इन परिस्थितियों में अन्य परियोजनाएं शुरू नहीं की जाएंगी, सरकार को पैसे के 50 यूनिट का संभावित घाटा होगा, क्योंकि असफलता की संभाव्यता आधी है और असफलता की स्थिति में सरकार को निवेशक को 100 की अदायगी करनी होगी। इसलिए अनुमानित राजकोषीय घाटे में 50 की बढ़ोतरी होगी।

अब मान लीजिए सरकार तीनों परियोजनाओं को गारंटी देती है, तब तीनों परियोजनाएं कार्यान्वित हो जाएंगी; और सरकार की अनुमानित लागत सिर्फ 15 (=3x0.05x100) है, क्योंकि तीन परियोजनाएं हैं, प्रत्येक परियोजना की असफलता की संभाव्यता 0.05 है और परियोजना के असफल होने की स्थिति में, सरकार को पैसे के 100 यूनिट की अदायगी करनी होगी। यदि ये परियोजनाएं सामाजिक दृष्टि से मूल्यवान संपदा सृजित करती हैं, जिनका मूल्य पैसे के 15 यूनिट से अधिक है, तो यह विवाद का विषय है कि तीनों परियोजनाओं को दी गई गारंटियां वांछनीय हैं। हालांकि किसी भी परियोजना को गारंटी देना लाभकर नहीं हो सकता।

यह साधारण सा गणित ऐसी कोई वजह नहीं देता कि जल्दी मचाकर गारंटियां दी जाएं या सान्त्वना पत्र भी दे दिए जाएं (ये सान्त्वना पत्र अक्सर कानून की नज़र में गारंटियों का रूप ले लेते हैं) लेकिन यह बात हमें इस सच के प्रति आगाह करती है कि विकास के लिए तैयार राष्ट्र के लिए, और परियोजनाएं आपस में पूरक होने के चलते, गारंटियों और राजकोषीय घाटे का परिकलन उतना सरल नहीं है जितना पहली नजर में प्रतीत होता है। हमें कई अवसंरचनात्मक परियोजनाओं को समन्वित तरीके से आगे बढ़ाने में प्रयासरत सरकार के लाभों और राजकोषीय लागतों का मूल्यांकन करना चाहिए; और यह स्वीकारना चाहिए कि लागत और लाभ वहीं नहीं रहेंगे, यदि हम प्रत्येक परियोजना के लिए अलग-अलग हिसाब लाएं और फिर उन्हें सिर्फ जोड़ दें।

संदर्भ [1] मर्फी, के.एम., ए. श्लेफर एण्ड आर. विष्नी, (1989) 'इंडस्ट्रियलाइजेशन एण्ड दि बिग पुश' जर्नल ऑफ पॉलिटिकल इकोनामी, वॉल्यूम 97. [2] रे.डी., (1998)

डेवलपमेंट इकोनामिक्स, प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, चैप्टर 5. [3] रेड्डी, वाई.वी. (2002), लेक्चर्स ऑन इकोनामिक एण्ड फाइनेंशियल सेक्टर रिफार्म्स इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस



## संविदाएं और कार्यक्षमता

2.44 कोई भी राष्ट्र समग्र बृहत आर्थिक स्तर पर किस प्रकार कार्य करता है, यह बहुत कुछ अर्थव्यवस्था की बुनियादी बारीकियों पर निर्भर करता है। बड़े और ध्यान आकर्षित करने वाले परिवर्तनीय कारकों के प्रबंधन से जुड़े हमारे सरोकारों में, छोटी-छोटी बातें आसानी से ध्यान से हट जाती हैं लेकिन वे महत्वपूर्ण हो सकती हैं। किसी भी राष्ट्र के कानून किस तरह लिखे जाते हैं, चाहे खाद्य सुरक्षा से संबंधित हो अथवा भूमि अधिग्रहण से जुड़ा हो, उससे अर्थव्यवस्था में भारी बदलाव आ सकते हैं। एक आयातक अथवा निर्यातक के लिए सीमाशुल्क संबंधी कागजी कार्रवाई पूरी करना और किसी कंपनी के लिए कर-विवरणियां प्रस्तुत करते समय प्रक्रियाएं किस प्रकार बोज़िल हो सकती हैं, वे किसी भी राष्ट्र की दूसरे राष्ट्रों के साथ प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता पर भारी असर डाल सकती हैं। यह जान लेना ज़रूरी है कि सरकार का उद्देश्य समर्थ और सुसाध्य बनाना होना चाहिए न कि अवरोध पैदा करना और हतोत्साहित करना। इसी दिशा में बढ़ने के लिए 1990 के दशक की शुरुआत में किए गए सुधारों ने अर्थव्यवस्था में जान फूंक दी और विकास को गति दी थी। जैसाकि अमर्त्य सेन ने 1995 में “प्रास्पेक्ट” के पहले अंक में प्रकाशित लेख में साम्यता और मानव विकास के महत्व के बारे में लिखा है “भारत में सुधारों के पश्चात आर्थिक विकास के लिए निश्चय ही एक अधिक सुरक्षित आधार है। वैश्विक बाजार में भारतीय अर्थव्यवस्था के मिल जाने और ‘लाइसेंस राज’ को खत्म करने से ऐसे आर्थिक अवसरों के रास्ते खुल गए जो पहले मौजूद नहीं थे।” इस दिशा में भारत में बहुत कुछ किया जा रहा है, जैसेकि घरेलू नव-परिवर्तनों को बढ़ावा देने और आरंभिक स्तर की वेन्चर पूंजी निधियों और मध्यस्थ निवेश के लिए माहौल को बढ़ावा देने के प्रयास जो कि इन्हें बढ़ावा देने के लिए योजना आयोग द्वारा समिति के गठन से जाहिर होता है।

2.45 भविष्य की बात करें तो, हालांकि सभी अलग-अलग क्षेत्रों को रेखांकित करना संभव नहीं है, जिन पर कार्रवाई किए जाने की आवश्यकता है, किन्तु बुनियादी सिद्धान्त सरल है। किसी भी आधुनिक अर्थव्यवस्था की मुख्य प्रेरक-शक्ति संविदा होती है। हमें एक ऐसी व्यवस्था की ज़रूरत है जहां व्यक्ति और फर्म, करार और संविदाएं जल्द निष्पादित करने में समर्थ हो सकें और उनके द्वारा एक बार ऐसा कर लेने के बाद, वे इन संविदाओं पर भरोसा कर सकें। किसी व्यक्ति द्वारा किसी संविदा का उल्लंघन किए जाने की स्थिति में, इस संविदा का वह हस्ताक्षरकर्ता जिसने कोई गलती न की हो, किन्तु इससे उसे नुकसान हुआ हो, उसका शीघ्र निवारण होना चाहिए। कुल मिलाकर ये विशेषताएं किसी राष्ट्र में कारोबार करने की तहजीब बताती हैं। ‘कारोबार करने की आसानी’ के पैमाने पर भारत का प्रदर्शन कहीं बदतर है। वर्ष 2012 में, विश्व बैंक द्वारा किए गए विभिन्न देशों के अध्ययन में 183 राष्ट्रों की सूची में भारत को 132वां स्थान दिया गया है। कारोबार शुरू करने और आवश्यक ‘अनुमतियां’ प्राप्त करने की प्रक्रियाओं के संबंध में भारत का 166वां स्थान है। निर्माण की अनुमति लेने के लिए, भारत 181वें स्थान पर है। केवल एक संकेतक जिस पर भारत का प्रदर्शन अच्छा है, वह है निवेशकों की सुरक्षा।

इस पर देश को 46वां स्थान मिला है, जो एक नवीन उभरती अर्थव्यवस्था के लिए शानदार प्रदर्शन है। दूसरी ओर, भारत में कर भुगतान करने में आने वाली कठिनाइयों में इसका 147वां स्थान है और संविदाएं प्रवृत्त कराने में 182वां स्थान।

2.46 जाहिर है, हमें उस ‘अनुमतिवाद’ की संस्कृति की बेड़ियां तोड़ने में अभी भी कुछ दूरी तय करनी है जो सृजनशीलता और उद्यमिता का दम घोटते हुए हमारे आर्थिक जीवन में पैर जमा चुकी है। सौभाग्य से, भारत ने अर्थव्यवस्था के इन छोटे मोटे घटकों में सुधार लाने का कार्य शुरू कर दिया है। जैसाकि वित्त मंत्री के 2011 के केंद्रीय बजट के भाषण में उल्लेख किया गया था, कारोबार और आम कर दाता के जीवन को आसान बनाने के लिए में अब कई उपाय किए गए हैं;

- आयकर विवरणियों की ऑनलाइन तैयारी और ई-प्रस्तुतीकरण, 32 एंजेंसी बैंकों के जरिए करों का ई-भुगतान, करदाताओं के बैंक खातों में सीधे ही वापसियों के इलेक्ट्रॉनिक समाशोधन के लिए ईसीएस सुविधा और स्रोत पर कर-कटौती (टीडीएस) की विवरणियों का इलेक्ट्रॉनिक प्रस्तुतीकरण अब देशभर में उपलब्ध है। इन उपायों से करदाता आयकर कार्यालय में गए बिना अपनी कर संबंधी देनदारियां पूरी कर सकते हैं।
- बेंगलुरु स्थित केंद्रीकृत प्रक्रियान्वयन केंद्र (सीपीसी) ने 2010-11 में अपनी दैनिक प्रक्रियान्वयन क्षमता 20,000 से बढ़ाकर 1.5 लाख विवरणियां कर दी है। इस परियोजना ने 2011 में ई-गवर्नेंस के लिए स्वर्ण पुरस्कार प्राप्त किया है। मई 2011 तक मानेसर और पुणे में और दो सीपीसी प्रचालनरत हो गए तथा चौथा सीपीसी 2011-12 में कोलकाता में स्थापित होगा।
- केंद्रीय उत्पाद और सीमा शुल्क बोर्ड (सीबीईसी) अपनी सूचना प्रौद्योगिकी समेकन की परियोजना पूरी करने के साथ ही अब केंद्रीय रूप से सीमा शुल्क, केंद्रीय उत्पाद शुल्क और सेवा कर में अपने प्रमुख अनुप्रयोग स्थापित कर सकता है। कस्टम्स इलेक्ट्रॉनिक डेटा इंटरचेंज (ईडीआर) प्रणाली अब देश भर के 92 स्थानों को कवर करती है। सीबीईसी के ई-कॉमर्स पोर्टल ‘आईसगेट’ को भी ई-गवर्नेंस के लिए स्वर्ण पुरस्कार दिया गया है।

2.47 इसके अलावा, एकीकृत जीएसटी प्रणाली लाने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं जिनसे एक ही बार में कर-कार्यक्षमता संबंधी विभिन्न उपायों के मामले में हमारी स्थिति बेहतर हो जानी चाहिए। इसका राष्ट्र के कारोबारी आचरण पर बड़ा असर हो सकता है। किन्तु यह मानना भी ज़रूरी है कि इनका क्रियान्वयन होने के बाद भी बहुत कुछ करना बाकी रहेगा। मार्गदर्शी सिद्धान्त यह होना चाहिए कि न केवल बोलने और लिखने की आजादी के संदर्भ में ही, जिसमें भारत का रिकार्ड प्रशंसनीय है, बल्कि आर्थिक व्यवहार और उद्यमिता में भी व्यक्ति के अस्तित्व का आदर किया जाए।

2.48 बाजार की मुख्य विशेषता होती है मूल्य। बाजार आधारित अर्थव्यवस्था में मूल्य विशिष्ट रूप से निदेशों से नहीं बल्कि वस्तुओं और सेवाओं की खरीद-फरोख्त में लगे लाखों व्यक्तियों के निर्णयों

से उभरते हैं। इस प्रक्रिया से उभर कर आने वाले मूल्य हमेशा उचित नहीं होते, और इसी वजह से, हमारे पास साठ-गांठ, प्रतिस्पर्धा-रोधी व्यवहार, और मूल्य बिगाड़ने के खिलाफ कानून हैं। इसके आगे बढ़कर, सरकारी हुकम से कीमतों को कम अथवा अधिक बनाए रखना, आमतौर पर अच्छी बात नहीं होती। इससे समस्या के समाधान की बजाय अधिक विकृति और दुर्भावना पैदा होती है। आर्थिक नीति-निर्धारण में बहुत कम अनुल्लंघनीय सिद्धांत होते हैं; और इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहां हमें कीमतों को केंद्रीय रूप से नियंत्रित करना पड़ता है। किन्तु इन्हें कम से कम रखा जाना चाहिए।

2.49 ऐसे मूल्य नियंत्रण से उपजी विकृतियां देखना आसान है। सबसे पहले, सरकार के हुकम से किसी वस्तु की कीमत तय करने का मतलब होगा, धनी और गरीब दोनों को सब्सिडी देना। इसलिए, जब हम उर्वरक अथवा डीजल की कीमत कम करते हैं तो बड़े किसानों और महंगी कार रखने वालों को भी सब्सिडी मिलती है। यदि, हम दोहरी कीमत तय करके इसे रोकने की कोशिश करें

जिसमें गरीबों और छोटे किसानों के लिए कम और धनी तथा संपन्न लोगों के लिए ऊंची कीमत हो, तो हम नौकरशाही को बढ़ावा देते हैं तथा छल-कपट और भ्रष्टाचार (बॉक्स 2.8 देखें) को आमंत्रित करते हैं क्योंकि जो इसे कम कीमत पर खरीदेगा, वह ऊंची कीमत वाली श्रेणी के उपभोक्ता को बेच सकता है। इसमें हैरानी की कोई बात नहीं है जब गरीब यह शिकायत करते हैं कि राशन के लिए पीडीएस स्टोरों से उन्हें अक्सर वापस लौटा दिया जाता है या मिलावटी खाद्यान्न दिया जाता है। इसका कारण यह है कि उनका हिस्सा अक्सर अधिक लाभ पर धनी व्यक्ति को बेचा जाता है जो बाजार मूल्य अदा करता है। यह तो इस समस्या की छोटी सी बानगी भर है जो 1970, 1980 और 1990 के दशक में ऐसे कुछ देशों में आम थी, जहां मूल्य नियंत्रण का व्यापक इस्तेमाल किया जाता था। कीमतें कम होंगी लेकिन वस्तुएं नदारद—“कीमत कम माल नहीं”। उपभोक्ताओं को लौटा दिया जाएगा अथवा उन्हें ब्रेड, मक्खन और साबुन जैसी बुनियादी वस्तुएं सीमित मात्रा में खरीदने के लिए भी लंबी लाइनों में प्रतीक्षा करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा।

### बॉक्स 2.8 : विनियमन के अतिरेक का जोखिम

भ्रष्टाचार और कमजोर अभिशासन कई देशों में प्रमुख समस्याएं रही हैं। अक्सर भ्रष्टाचार पर रोक लगाने के प्रयासों के साथ-साथ विनियमों में वृद्धि हो जाती है। लेकिन, यह सरकारी निकायों की समग्र कुशलता में वृद्धि करने के संदर्भ में उलटा असर दिखा जाती है। इस पर बेंडिएरा, प्रैट और वैलेटि (1) ने हालिया पेपर पत्र में बल दिया था। इस पेपर में सरकारी सेवाओं में “सक्रिय बर्बादी” और “निष्क्रिय बर्बादी” का अन्तर बताया गया था। “सक्रिय बर्बादी” वह स्थिति है जहां सरकारी निर्णयकर्ता सीधे अथवा अप्रत्यक्ष लाभ उठाता है। खरीद में किया गया भ्रष्टाचार, जहां खरीदी गई वस्तु की कीमत रिश्वत लेकर बढ़ा दी गई है इसकी एक मिसाल है। इसके विपरीत “निष्क्रिय बर्बादी” में सरकारी कर्मचारियों को लाभ नहीं होता। यह पेचीदा विनियमों से उत्पन्न होती है जो सरकारी निकाय द्वारा अदा किए जाने वाली कीमत को बढ़ा देती है।

अनुसंधानकर्ताओं ने इटली के सरकारी निकायों में अधिप्राप्ति प्रणाली से अचानक उपजे स्वाभाविक प्रयोग से लाभ उठाया। सरकारी निकाय सीधे अथवा “कॉन्सिप” नामक केन्द्रीय अधिप्राप्ति एजेंसी से वस्तुएं खरीद सकते हैं। कॉन्सिप खरीदों में सक्रिय बर्बादी के मौके नहीं होते लेकिन यह निष्क्रिय बर्बादी से जुड़ी हो सकती है। कॉन्सिप ने आपूर्तिकर्ताओं के साथ विशिष्ट समयावधि पर निर्धारित मूल्यों पर कतिपय वस्तुओं की आपूर्ति का करार किया होता है। चूंकि ये करार सदैव प्रचालन में नहीं होते, सरकारी निकायों ने ऐसी स्थितियों का सामना भी किया जब वे कतिपय वस्तुएं सीधे या कॉन्सिप के जरिए खरीद सकते थे और ऐसा भी समय था जब वे केवल सीधे खरीद सकते थे। ये अलग-अलग परिस्थितियां अनुसंधानकर्ताओं को निष्क्रिय बर्बादी की प्रवृत्ति की जांच करने में मदद करती हैं।

ये विश्लेषण दर्शाते हैं कि अलग-अलग सरकारी निकायों द्वारा चुकाई गई औसत कीमतों में काफी अन्तर होता है। ये अन्तर विभिन्न प्रकार की संस्थाओं से सह-संबंधित होते हैं। अर्द्ध-स्वायत्त निकाय न्यूनतम मूल्य चुकाते हैं। शहरी सरकारें उनसे लगभग 13 प्रतिशत अधिक, क्षेत्रीय सरकारें 21 प्रतिशत अधिक और साधारण मंत्रालय सबसे अधिक लगभग 40 प्रतिशत अधिक मूल्य चुकाते हैं। इस पेपर में ये प्रमाण हैं कि वे सरकारी निकाय, जिनकी निष्क्रिय बर्बादी कम है, अधिक सक्रिय बर्बादी के लिए उद्यत नहीं होते जो सरकारी खरीद पर हुई बर्बादी का अनुमानतः लगभग 82 प्रतिशत होती है। विनियामक बोर्ड और अडिथल रूख से उपजी निष्क्रिय बर्बादी का प्रभाव मनमानी से उपजी सक्रिय बर्बादी के मुकाबले ज्यादा खराब हो सकता है। इसका अर्थ यह नहीं कि भ्रष्टाचार या सक्रिय बर्बादी महत्वपूर्ण मुद्दे नहीं हैं। लेकिन मनमानी पर नियंत्रण और विनियमन में बढ़ोतरी सर्वाधिक प्रभावशाली हल नहीं हो सकती। इसकी बजाय, संगठनात्मक रूप का महत्व अधिक होता है और यहां अपेक्षाकृत अधिक स्वायत्त निकाय बेहतर काम कर रहे हैं। जाहिर तौर पर यह अन्तर्दृष्टि यह बताती है कि उपयुक्त निरीक्षण-नियंत्रणों के साथ स्वायत्तता और विवेक, सख्त और कड़े विनियमों की तुलना में बेहतर सिद्ध हो सकते हैं।

जहां हमें भ्रष्टाचार को कठोरता से समाप्त करने की आवश्यकता है, वहीं साथ ही यह समझना भी जरूरी है कि बड़ी और जटिल भ्रष्टाचार-रोधी नौकरशाही का भय जोखिम लेने की प्रवृत्ति हेतु हानिकारक हो सकता है और सरकारी संस्थाओं में न्यायसंगत क्रिया-कलापों को आघात पहुंचा सकता है। इस बात को कोल और डुफलो [2] द्वारा एक पेपर में भारतीय बैंकिंग क्षेत्र में रेखांकित किया गया है। पिछले अनुसंधान के आधार पर, जिसमें बताया गया है कि सरकारी बैंकों के ऋण अधिकारी विकसित हो रही फर्मों को लाभकारी अवसरों के लिए ऋण देने में अनिच्छुक होते हैं और ऋण अधिकारियों के किस्से भी हैं। जिनमें भ्रष्टाचार के लिए अदालती कार्रवाई का डर इसका एक कारण बताया गया है, लेखकों ने ऋण पर सतर्कता संबंधी क्रियाकलापों के प्रभाव का अध्ययन किया है। उन्होंने पाया कि सतर्कता संबंधी क्रियाकलाप का परिणाम यह रहा कि प्रभावित शाखाओं के साथ-साथ पड़ोसी शाखाओं में भी ऋण देने में कमी आई और इसका प्रभाव दो वर्ष तक रहा। सतर्कता संबंधी कार्रवाइयों के बाद जोखिम उठाने की प्रवृत्ति में भी कमी आई।

सारांश में, श्रेष्ठ नीति की संरचना को केवल प्रक्रियात्मक कठोरता और नौकरशाही विस्तार से अलग रखने की आवश्यकता है क्योंकि यदि नौकरशाही विस्तार पर सही ढंग से विचार नहीं किया गया तो इससे सरकारी व्यय तथा सेवा सुपुर्दगी में अकुशलता और बर्बादी बढ़ सकती है।

**सन्दर्भ** [1] बेंडिएरा, ओ, ए प्रैट और टी वैलेटि (2006), ‘एक्टिव एण्ड पैसिव वेस्ट इन गवर्मेंट स्पेंडिंग: एविडेन्स फ्रॉम ए पॉलिसी एक्सपेरिमेंट’, अमेरिकन इकोनॉमिक रिव्यू, वॉल्यूम 99 [2] बनर्जी ए, एस- कोल, एण्ड ई- डुफलो (2006) ‘आर द मोनिटर्स ओवर मोनिटेर्ड? एविडेन्स फ्रॉम करप्शन एण्ड लेन्डिंग इन इण्डियन बैंक्स’, मिमियो।

2.50 एक दूसरी समस्या है जो सरकारी हुक्म से उपभोक्ताओं के लिए कम रखी गई कीमतों से पैदा होती है। इन वस्तुओं को बनाने वाली फर्में घाटे में चली जाएंगी; इसलिए सरकार इन फर्मों को सब्सिडी देगी अथवा इनकी 'कम वसूलियों' के लिए भुगतान करना होगा, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि इन वस्तुओं का उत्पादन होता रहे। इसका मतलब सबसे पहले होगा-इसकी अनुषंगी लागतों के चलते भारी राजकोषीय घाटा; इसके अलावा और जो कुछ हद तक अधिक महत्वपूर्ण भी है-कार्यदक्ष होने और लागत कम करने प्रोत्साहन बिलकुल समाप्त हो जाएगा क्योंकि फर्में जानती हैं कि उनकी लागतें जो भी हों, अंततः उनकी भरपाई के लिए सरकार उन्हें सब्सिडी दे देगी।

2.51 मूल्य नियंत्रण के साथ तीसरी समस्या भी है। कीमतें उपभोक्ता और विक्रेता तथा उन सभी के लिए संकेत होती हैं जो कमी (अथवा, समतुल्य रूप से, उत्पादन की बढ़ती लागत) और प्रचुरता के उत्पादों में भूमिका निभाते हैं। कीमतें तब बढ़ती हैं जब वस्तुओं की कमी हो और घटती तब हैं जब वस्तुओं की भरमार हो। एक बार कीमतें नियंत्रित किए जाने पर हम कारगर तरीके से ये संकेत कम कर सकते हैं। पेट्रोलियम उत्पादों, मिसाल के तौर पर, डीजल को ही लें। जब कच्चे तेल की अंतरराष्ट्रीय कीमतें बढ़ती हैं तो भारत में, जिसे इस उत्पाद का अधिकांश आयात करना पड़ता है, इस उत्पाद की कमी हो जाती है। यदि कीमतें बाजार के भरोसे छोड़ दी जाएं तो इसकी प्रतिक्रिया में डीजल की कीमत में वृद्धि होगी, आम जनता अपने डीजल के इस्तेमाल में किफायत बरतेगी, और मांग में कमी आएगी, जो कि सचमुच ही वस्तुओं की कमी के दौरान होना चाहिए। भारत में ऐसा शायद ही होता है, क्योंकि ईंधन और ऊर्जा संसाधनों के कई क्षेत्रों में कमी और निविष्टियों की बढ़ती लागत को उपभोक्ताओं तक अंतरित नहीं किया जाता।

2.52 ये सभी लागतें मिलकर बहुत अधिक हो जाती हैं और अक्षमता, भारी घाटे तथा अतिरिक्त स्फीतिकारी दबाव (उन वस्तुओं और सेवाओं के लिए जिन्हें नियंत्रित नहीं किया गया हो) पैदा करती हैं। इसलिए हमें भारत में मूल्य नियंत्रण की व्यवस्था से हटने के लिए कदम उठाने होंगे। इसका मतलब यह नहीं है कि हम गरीबों को बाजार की कमियों-दोषों के भरोसे छोड़ दें। इसका मतलब यह है कि जब भी संभव हो, हम गरीबों को सीधे ही सब्सिडी दें, अर्थात् उनके बैंक खातों में अंतरण करके अथवा उन्हें नकद देकर उनकी आमदनी बढ़ाएं। सूचना प्रौद्योगिकी में भारत का बढ़ता स्तर और बायो-मार्कर से व्यक्तियों की पहचान किए जाने की क्षमता के चलते यह अब पूरी तरह संभव है। बेशक, परिवर्तन में हमेशा ही कुछ लेन-देन लागतें शामिल होती हैं, लेकिन हर समय उन लागतों से बचने का अर्थ है सतत् गरीबी को निमंत्रण देना और पुरानी-पिछड़ी संस्थाओं से चिपके रहना। भारत में बहुत लंबे समय से अनेक पेट्रोलियम उत्पादों की नियंत्रित कीमतों की व्यवस्था बनी रही है और उससे अलग होना आसान नहीं है। पेट्रोल को 25 जून 2010 को विनियंत्रित किया गया; उसी दिन यह घोषणा की गई कि डीजल को भी विनियंत्रित किया जाएगा, लेकिन ऐसा

हुआ नहीं है। मूल समस्या इस तथ्य से उपजती है कि पेट्रोल और डीजल की मार्केटिंग इतने लंबे समय से नियंत्रित क्षेत्र रही है (ऐसी व्यवस्था जिसमें सरकारी क्षेत्र की कंपनियों को उनकी लागत पूरी करने के लिए सब्सिडी दी जाती है) कि वस्तुतः सभी निजी भागीदार इस बाजार से बाहर हो चुके हैं।

2.53 ऐसे बाजार में जहां सभी प्रमुख भागीदार सरकारी क्षेत्र की कंपनियां हैं, "बाजार मूल्य" कोई बहुत सार्थक संकल्पना नहीं है। पहले कदम के तौर पर, यह जरूरी है कि पेट्रोल का मूल्य-निर्धारण पारदर्शी फार्मूले के अनुसार किया जाए-यदि कच्चे तेल की कीमत 'क' है और विनिमय दर 'ख', तो सरकार प्रत्येक महीने या पखवाड़े में पेट्रोल की अधिकतम कीमत की घोषणा करेगी जिसकी गणना कोई भी 'क' और 'ख' से कर सकता है। यह सुनिश्चित करने के लिए नियम बनाना होगा कि तेल कंपनियां आम तौर पर अपनी लागत वसूल कर सकें। इसका अर्थ यह होगा कि यदि कोई कंपनी नवीन परिवर्तन करती है और लागत कम कर पाती है तो वह अधिक लाभ कमा सकेगी। इसलिए, इस व्यवस्था के अंतर्गत फर्मों का रुझान नवीन परिवर्तन करने और कार्यदक्ष होने की ओर अधिक होगा। एक बार नियम घोषित हो जाने के बाद, सरकार की ओर से कोई दखल नहीं होना चाहिए। यदि कुछ देर के लिए ऐसा किया जाता है तो निजी कंपनियां बाजार में दोबारा दाखिल होंगी। और एक बार इस दौड़ में पर्याप्त संख्या में भागीदार आ जाएं तो हम नियम-आधारित मूल्य-निर्धारण को खत्म कर सकते हैं और पूरी तरह बाजार पर निर्भर हो सकते हैं (जो बेशक, एन्ट्रि ट्रस्ट विनियमों और अन्य प्रतिस्पर्धा कानूनों के अधधीन होगा)।

2.54 डीजल के मामले में, जहां कीमतों को विनियंत्रित करने के लिए अभी तक शुरूआती कदम भी नहीं उठाया गया, एक संभावित मध्यवर्ती कदम यह हो सकता है कि सरकार प्रति लीटर सब्सिडी नियत करे। दूसरे शब्दों में, किसी भी तेल विपणन कंपनी द्वारा बेचे गए प्रति लीटर डीजल पर सरकार कुछ रुपयों की निर्धारित सब्सिडी देगी। यह आदर्श स्थिति नहीं है लेकिन अन्तरिम उपाय के रूप में इसके कई फायदे हैं। ज्ञात रहे कि चूंकि यह सब्सिडी प्रति लीटर पर निर्धारित है, तो सरकार के राजकोषीय बोझ को कच्चे तेल के मूल्य में हुई वृद्धि से उत्पन्न बोझ का पूरा हिस्सा नहीं ढोना पड़ेगा। इस बोझ में एकमात्र बदलाव, कच्चे तेल की समग्र खपत में आए बदलावों के कारण होगा जो एक पूर्वानुमानित आंकड़ा है। दूसरे, कीमत की सांकेतिक भूमिका भी काफी हद तक अप्रभावित रहेगी। यदि प्रति लीटर नियत सब्सिडी के साथ कच्चे तेल की कीमत बढ़ती है, तो उपभोक्ता द्वारा अदा की जाने वाली कीमत भी बढ़ेगी और इसलिए डीजल के प्रयोग में बचत करने का संकेत भी अन्तरित हो जाएगा। इसे यह अपेक्षा जोड़कर इस तरह और परिष्कृत किया जा सकता है कि यदि मूल्य वृद्धि बहुत अधिक होगी तो प्रति लीटर सब्सिडी बढ़ा दी जाएगी, ताकि उपभोक्ता की कुछ रक्षा की जा सके। जरूरी यह है कि सब्सिडी पूर्व-निर्दिष्ट होनी चाहिए ताकि उसके बाद सरकार इस परिदृश्य में शामिल ही न हो। भले ही हम प्रति लीटर डीजल पर सब्सिडी दे या नहीं, जब तक इस कारोबार में और अधिक निजी फर्म प्रवेश

नहीं करती, हमें उपभोक्ता मूल्य पर फॉर्मूला-आधारित ऊपरी सीमा ही लगानी होगी। फॉर्मूला आधारित होने के चलते, यह कच्चे तेल की अन्तरराष्ट्रीय कीमतों और विनिमय दरों की तर्ज पर ऊपर-नीचे आएगी और ऊपरी सीमा यह सुनिश्चित करने के लिए तय की जाएगी कि फर्म अपनी लागतों को कवर कर सकें। यहां तक कि बाजार में निजी भागीदारों के प्रवेश के बाद भी, ऊपरी सीमा तय रखना संभव है लेकिन ऐसे मामले में ऊपरी सीमा रखने के पीछे प्रयोजन एन्टि ट्रस्ट उपाय के तौर पर होगा ताकि साठ-गांठ से मूल्यों में तेजी लाने की संभावना को खत्म किया जाए।

2.55 एक और क्षेत्र जिस पर हमें बुनियादी सिद्धान्तों से लिए गए विचारों को लेकर कुछ चिन्तन-मनन करने की जरूरत है वह है-भूमि अधिग्रहण। यह भारत के विनिर्माण और औद्योगिक क्षेत्र के लिए बहुत महत्व रखता है। पिछले कुछ समय से इन क्षेत्रों ने अच्छा प्रदर्शन नहीं किया है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद में मूल्य वर्धन के सन्दर्भ में उद्योग का हिस्सा 28.7 प्रतिशत के शिखर पर पहुंच गया था लेकिन अब यह कम होकर 27 प्रतिशत रह गया। हालांकि हम सेवा क्षेत्र में अच्छे प्रदर्शन में रुकावट डालने के लिए कोई कदम नहीं उठाना चाहते जो राष्ट्र के विकास की प्रेरक शक्ति बना हुआ है, फिर भी विनिर्माण और उद्योग को बढ़ावा देना बहुत जरूरी है। खासकर इसलिए कि जनसांख्यिकीय लाभ से भारत को कार्यशील-आयु वर्ग की अच्छी-खासी आबादी मिलेगी।

2.56 विकासशील उद्योग के संबंध में यह जरूरी है कि पहले की गई गलती को न दोहराया जाए, जब भारत ने इस क्षेत्र में सीधे निवेश करने के लिए लाइसेंस देने की प्रणाली का प्रयोग करने का प्रयास किया था। इसकी बजाय बाजार के प्रेरक ढांचे को ध्यान में रखते हुए सरकार का उद्देश्य सबके लिए समान अवसर का माहौल पैदा करने, आवश्यक अवसरचानात्मक सुविधाएं और हस्तक्षेप न करने वाली नौकरशाही की व्यवस्था करने और फिर उस क्षेत्र को अपने बलबूते पर उन्नत होने में समर्थ बनाना होना चाहिए। छोटे शहरों का विकास इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। छोटे शहर अच्छा विकास करें, इसके लिए सरकार को इन्हें सड़कों और रेल के जरिए संपर्क-सुविधा, विद्युत और जल आपूर्ति जैसी मूल अवसरचाना-सुविधाएं तथा कानून और व्यवस्था प्रदान करनी होगी। बड़े महानगरों की बढ़ती सम्पर्क सुविधा को इस्तेमाल करके हम बड़े शहरों को जोड़ने वाले प्रमुख राजमार्गों के साथ ये सुविधाएं प्रदान करने का प्रयास कर सकते हैं और इसके साथ-साथ छोटे शहरों के निर्माण को बढ़ावा दे सकते हैं।

2.57 इन सब के साथ भी उद्योग द्वारा अच्छा कार्य करने की पहली पूर्वापेक्षा यह होगी कि कृषि क्षेत्र से जमीन खरीदने के लिए एक व्यवस्था हो क्योंकि बहुत से उद्योगों में भूमि और श्रम दोनों की प्रधानता होती है। भारत जैसे राष्ट्र में भूमि अधिग्रहण में कुछ वास्तविक अड़चनें हैं। मूल समस्या वह है जिसे अवरोधक समस्या कहा जाता है। आमतौर पर, नए उद्योग अथवा विनिर्माण इकाई स्थापित करने के लिए एक विशाल संसांर्गिक भूखण्ड की जरूरत पड़ती है और चूंकि कृषि भूमि स्वामित्व बहुत अधिक बंटा-बिखरा है, एक औद्योगिक उद्यमी को एक साथ बहुत सारे किसानों के साथ

बातचीत करनी पड़ती है और इसी में समस्या की जड़ है। यदि सारे किसान जमीन बेचने के लिए सहमत हो जाते हैं, लेकिन एक या दो किसान जिनकी जमीन इस क्षेत्र के बीचों बीच पड़ती है, जमीन बेचने से इन्कार कर देते हैं, तब औद्योगिक उद्यमी के लिए यह सम्पूर्ण परियोजना अव्यवहार्य हो जाएगी। इसका अर्थ यही है कि किसानों के हित एक दूसरे से टकराना शुरू कर देंगे। यदि हम किसी एक अनिच्छुक किसान को जमीन बेचने के लिए मजबूर करते हैं तो हम उसके हित की उपेक्षा करते हैं; और यदि हम परियोजना को छोड़ देते हैं तो हम उन किसानों के हितों की उपेक्षा करते हैं जो जमीन बेचना चाहते हैं। इससे यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए जो प्रायः समझी नहीं जाती, वह यह कि व्यवहार्य भूमि अधिग्रहण नीति न होने का अर्थ है-किसानों के अधिकारों अर्थात् जो अपनी जमीन बेचना चाहते हैं, उनके अधिकार को जोखिम में डालना।

2.58 यही स्थिति है जिसके लिए सरकार को मध्यस्थ की भूमिका निभानी होगी। इसे पूरी तरह बाजार के भरोसे छोड़ने का अर्थ यह होगा अवरोधक समस्या के आगे घुटने टेक देना। इससे न केवल औद्योगीकरण मंद पड़ जाएगा, बल्कि इसका अर्थ उन किसानों की आकांक्षाओं को कुचल देना भी होगा जो अपनी जमीन बेचकर अपार धन अर्जित करना चाहते हैं। यही एक कारण है कि इस क्षेत्र में सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक समझा जाता है। इस विषय पर एक सुस्पष्ट कानून बनाने की जरूरत है कि कहां और किन परिस्थितियों में और किस तरह की अदायगी करके सरकार औद्योगिक प्रयोजनों के लिए भूमि अधिग्रहीत कर सकती है। भारत का नया भूमि अधिग्रहण विधेयक इस समस्या की पहचान पर आधारित है और यह आशा है कि शीघ्र ही हमारे पास सुगठित कानून होगा और भारतीय उद्योग अपनी क्षमता के अनुसार विकास की ओर अग्रसर होगा।

2.59 अच्छी नीति बनाने के लिए अनुसंधान और नव-परिवर्तन आवश्यक हैं (बॉक्स 2.9 देखें) और भारत में विधि और अर्थशास्त्र पर जांच और शोध की दृष्टि से और अधिक ध्यान दिये जाने की जरूरत है। कानूनी प्रणाली जो वैयक्तिक प्रोत्साहनों की ओर और समय बीतने के साथ विकसित होते अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों की ओर ध्यान नहीं देती, उसमें खतरा यह रहता है कि वह इतनी जटिल और विवादास्पद हो जाएगी कि किसी के लिए भी यह बहुत कठिन हो जाएगा कि वह कानून का उल्लंघन किए बिना कोई व्यवसाय कर सके। यदि ऐसा होता है, तो हमारे पास व्यवसाय अथवा उद्यमशीलता को विराम देने अथवा कायदे कानूनों का उल्लंघन करने का ही विकल्प शेष रह जाता है। अतः इस बात को ध्यान में रखते हुए समय के साथ अर्थव्यवस्था से जुड़े हमारे कानूनों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। साथ ही उद्देश्य यह होना चाहिए कि व्यक्तियों और फर्मों को यथासंभव स्पष्ट अधिकार दिए जाएं, दूसरों के हित को हानि पहुंचाए बिना अधिकाधिक स्वतंत्रता दी जाए और सुगम निकास मार्ग उपलब्ध कराया जाए। जहां तक संभव हो, यदि किसी व्यक्ति को कोई अधिकार दिया जाए तो उसे उस अधिकार को बेचने का भी अधिकार होना चाहिए। इसके

**बॉक्स 2.9 : दिल्ली इकनॉमिक्स कॉन्क्लेव, 2011**

वित्त मंत्रालय, भारत सरकार ने राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति संस्थान (एनआईपीएफपी), भारतीय उद्योग परिसंघ (सीआईआई), दिल्ली स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स (डीएसई) और भारतीय सांख्यिकीय संस्थान (आईएसआई) के सहयोग से 12-17 दिसम्बर 2011 के सप्ताह के दौरान व्याख्यान, संगोष्ठियों और कार्यशालाओं का आयोजन किया था। इस अवसर के उपलक्ष्य में इस सप्ताह को दिल्ली इकनॉमिक्स कॉन्क्लेव (डीईसी) 2011 घोषित किया गया था। इस कॉन्क्लेव का मुख्य दिवस 14 दिसम्बर, 2011 था जब पूर्णाधिवेशन 'उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए आर्थिक नीतियां' इस विषय पर आयोजित किए गए थे।

इस कॉन्क्लेव के ज़रिए प्रसिद्ध आर्थिक विचारक-नेता और आर्थिक कार्य से जुड़े पेशेवर व्यक्तियों के साथ-साथ नीति निर्माता और हित धारक भारत की राजधानी में एक मंच पर इकट्ठे हुए थे। विभिन्न देशों, जिनमें यूएस, यूके, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, सिंगापुर और बांग्लादेश शामिल हैं, से आए 400 से अधिक प्रतिभागियों ने भाग लिया। गहन विचार-विमर्श के मंच के तौर पर इसमें उभरते वैश्विक आर्थिक माहौल के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया, जिसमें बड़ी उभरती अर्थव्यवस्था और एक जीवंत लोकतंत्र के रूप में भारत की भूमिका पर विशेष बल दिया गया था।

इस सम्मेलन का आयोजन हालिया आर्थिक और वित्तीय संकट की पृष्ठभूमि में, ऐसे तरीकों पर चर्चा करने के लिए किया गया था जिनके ज़रिए भारत जैसी उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाएं इन बाहरी प्रभावों के प्रतिकूल प्रभावों का सामना कर सकती थीं। इस संबंध में इस सम्मेलन में अनेक मुद्दों पर विचार-विमर्श हुआ जैसेकि मंदी के परिणामी प्रभाव और आसन्न मंदी से निपटने के लिए आर्थिक एवं सामाजिक नीतियां। ये सभी परिचर्चाएं इस राय पर एकमत थीं कि उभरती अर्थव्यवस्थाओं की सुदृढ़ वैकल्पिक योजनाएं होनी चाहिए और उन्हें दक्षिण-दक्षिण व्यापार पर अधिक ध्यान केंद्रित करना चाहिए। विभिन्न विचारों में से चयन करने के बाद भारत के लिए छः प्राथमिकताएं सामने आती हैं: निवेश और पूंजी निर्माण; सरकारी निवेश के ज़रिए अधिक कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता; राजकोषीय समेकन; जनसांख्यिकीय लाभ को वसूलने के लिए शिक्षा एवं कौशल विकास; परिसंपत्ति सृजन के लिए विदेशी निवेश का प्रवाह सुनिश्चित करना; और बेहतर स्वास्थ्य सुविधाओं, शिक्षा एवं वित्तीय समावेशन के ज़रिए समावेशी विकास पर ध्यान देना। नीति-निर्माण की प्रक्रिया अब घिसे-पिटे नियमों के कार्यान्वयन की मशीनी प्रक्रिया से हटकर सुस्पष्ट, अनुकूल विचारों को बढ़ावा देने और उन्हें कार्यान्वित करने पर केंद्रित होनी चाहिए। ऐसा करने वाले राष्ट्रों को अपार लाभ हुआ है। नीति-निर्माण की दुनिया में नए लोगों और परिवर्तनों का आगमन ज़रूरी है। दिल्ली इकनॉमिक्स कॉन्क्लेव जैसा संवाद इसी दिशा में एक कदम है। लेकिन जैसे-जैसे भारत तरक्की करेगा और औद्योगिकृत होगा, हमें इसमें अपनी कल्पना का पुट भी देना होगा।

अभाव में, प्रायः बहुमूल्य परिसंपत्तियां व्यक्तियों और उद्यमों से सम्बद्ध और निष्प्रभावी हो जाती हैं। भारत में कई संस्थाएं हैं जिन्हें ऐसे प्रतिबन्ध लगाकर भूमि प्रदान की गई है कि उससे भूमि का प्रयोग कैसे किया जाए और भूमि के बेचने पर बहुत प्रतिबंध लगाए गए हैं। परिणाम यह है कि भूमि का कम उपयोग हो रहा है।

2.60 इसी प्रकार की स्थिति श्रम कानूनों की है। नियोक्ताओं और कर्मचारियों को और अधिक स्वतंत्रता दिए जाने की ज़रूरत है ताकि वे स्वैच्छिक रूप से विभिन्न प्रकार की सविदाएं कर सकें तथा राज्य उन सविदाओं को मान्यता दे तथा उन्हें लागू करने में सहायता करे। आधुनिक अर्थव्यवस्था में प्रत्येक क्षेत्र की आवश्यकता अलग-अलग होती है। कुछ को स्थायी श्रमिक की ज़रूरत हो सकती है जबकि कुछ मांग पर काम करते हैं जो अस्थिर होती है और उन्हें अपनी श्रम-शक्ति को कम ज्यादा करने में लचीलेपन की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार कुछ कामगार स्थायी कार्यकाल की अपेक्षा रखते हैं जबकि कुछ अन्य कामगार अधिक धन कमाने के लिए इसे छोड़ने के इच्छुक होते हैं। इस लचीलेपन की अनुमति न होने का तात्पर्य है-गतिरूद्ध मजदूरी पर अपेक्षाकृत कम संगठित श्रमिक बाजार। स्वतंत्रता और लचीलेपन के सभी प्रावधानों की कुछ सीमाएं होती हैं। लेकिन जब ये सीमाएं इतनी बाध्यकारी हो जाती हैं कि अंततः हम श्रमिक की मांग पर नियंत्रण रखना शुरू कर देते हैं और इस तरह श्रमिकों के हित को बड़ी ठेस पहुंचती है क्योंकि सीमित मांग होने से मजदूरी कम बनी रहती है। इसी प्रकार, हमें फर्मों के लिए और अधिक पारदर्शी निकासी मार्गों की आवश्यकता है। इसका तात्पर्य यह होगा कि रुग्ण उद्योगों से बड़ी मात्रा में जुड़ी भूमि शीघ्र ही मुक्त हो जाएगी तथा इससे हमारे विनिर्माण क्षेत्र की समग्र कार्यकुशलता में वृद्धि होगी। भारत के विनिर्माण क्षेत्र की कारखाने के भीतर उत्पादन-लागतें काफी

प्रतिस्पर्द्धात्मक हैं। यदि लेन-देन और प्रशासनिक लागतें कम की जाएं तो अन्तरराष्ट्रीय बाजारों में प्रतिस्पर्द्धात्मकता के सन्दर्भ में उद्योग क्षेत्र को बढ़ावा मिलेगा। ये ऐसे मसले नहीं जिनका समाधान एक दिन में हो जाएगा लेकिन यदि हम एक कार्यकुशल अर्थव्यवस्था और समाज चाहते हैं और भारत को विश्व के औद्योगिकृत देशों के बीच देखना चाहते हैं तो इन क्षेत्रों में हमें देर-सवेर कार्रवाई करनी ही होगी।

2.61 अन्त में, किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति की बात करते समय प्रशंसा और आलोचना दोनों समेत सारा ध्यान सामान्यतः सरकार पर केंद्रित होता है। हालांकि यह जान लेना ज़रूरी है कि बहुत कुछ नागरिक समाज, फर्मों, किसानों और आम नागरिकों पर भी निर्भर करता है। वे सामाजिक मापदण्ड और सामूहिक विश्वास जो इन कारकों के व्यवहार को निर्धारित करते हैं, इस बात में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं कि कोई राष्ट्र कैसे काम करता है। (बॉक्स 2.10)। ईमानदारी, समय की पाबंदी, अपने वायदे को पूरा करने की भावना, भ्रष्टाचार के प्रति रवैया ऐसे विषय हैं जो बहुत हद तक इन्हीं मापदण्डों और सामाजिक विश्वासों के ज़रिए रूप-आकार लेते हैं और व्यवहार-पद्धति आदत का रूप ले सकती है। इसके अलावा, भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में सरकार क्या कर सकती है, यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि आम जनता क्या सोचती है और लोग किसमें विश्वास करते हैं। यही चुनावी राजनीति है। विगत में इस पर बहुत कम ध्यान दिए जाने का एक महत्वपूर्ण कारण यह रहा कि पारम्परिक अर्थशास्त्र के बारे में इतना लिखा जा रहा था कि जैसे अर्थशास्त्र से परे जीवन के इन पहलुओं का कोई महत्त्व ही न हो। लेकिन अब हम यह जानते हैं कि कोई बाजार अर्थव्यवस्था कार्य नहीं कर सकती यदि लोग पूरी तरह स्वार्थी हों। जहां अपना हित आर्थिक विकास का

**बाक्स 2.10 : मूल्य और अर्थशास्त्र**

मनोविज्ञान और विकासमूलक जीव-विज्ञान में ऐसे अध्ययन हुए हैं जो दर्शाते हैं कि नैतिकता, परोपकार और ऐसे ही अन्य मूल्य मानव-स्वभाव का अभिन्न अंग हैं। हालांकि वह सामाजिक व्यवस्था, जिसमें मनुष्य रह रहा है, इन गुणों को पुष्पित-पल्लवित कर सकती है या गतिरुद्ध भी कर सकती है। अर्थशास्त्र में इस बात को कुछ देर से स्वीकारा गया कि इन मानवीय और नैतिक गुणों का आर्थिक विकास पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसलिए, इस संबंध में उपलब्ध साहित्य अपेक्षाकृत नया और कम है। फुकुयामा की एक सुविख्यात कृति है जिसमें यह बताया गया है कि लोगों के बीच गहरा विश्वास-भाव पैदा कर लेने वाले समाज ऐसे समाज थे जिन्होंने प्रचुर आर्थिक समृद्धि हासिल कर ली थी। अब हमें मालूम हो चुका है कि यह बात बहुत से सामाजिक मापदंडों और आदतों के संबंध में सच है। वस्तुतः हालिया अनुसंधान दर्शाते हैं कि समाज में कुछ 'अच्छे' मनुष्यों के होने से ऐसी ऊर्जा पैदा होती है जिसके ज़रिए समूचा समाज बेहतर होता जाता है।

ऐसे भी प्रमाण हैं कि ऐसे सामाजिक मापदंड और आदतें जो पहली नज़र में किसी समाज में रची-बसी दिखाई देती हैं, उनमें कुछ समय बीतने पर बदलाव लाए जा सकते हैं। इसी तर्क से, भारत के लिए यह संभव है कि इस तरह के सामाजिक मापदंड को बढ़ावा दे और विकसित करे जिससे एक अधिक गतिशील अर्थव्यवस्था कायम होना संभव हो सके। आगे सामाजिक आदतों के बदलाव का एक दिलचस्प उदाहरण दिया गया है, जिसमें राष्ट्र की पहचान जानबूझकर गुप्त रखी गई है: अपने प्रकाशित संस्मरणों में, कैटनडाइक (इस राष्ट्र की यात्रा पर आया एक यूरोपीय) ने उस राष्ट्र की कोफ्त पैदा कर देने वाली मन्थर गति बताने के लिए कई घटनाओं का जिक्र किया। मिसाल के तौर पर, मरम्मत करने के लिए ज़रूरी सामान जो उन्होंने ख़ास तौर पर दिन में पहुंचाने के लिए कहा था, समय पर नहीं पहुंचा; एक कारीगर सिर्फ एक बार आया और फिर वापस ही नहीं आया...। सच तो यह है कि कैटनडाइक की हताशा इस देश में आने वाले अधिकतर विदेशी इंजीनियरों ने महसूस की ... उन्हें अक्सर स्थानीय लोगों के काम की आदतों से परेशानी हुई और उनकी परेशानी की मुख्य वजह समय की कद्र न होना था। इन विदेशियों की नज़र में, स्थानीय लोग घड़ी के प्रति बिल्कुल उदासीन रवैया रखते थे।”

जिस राष्ट्र की बात हो रही है, वह है जापान, जो निश्चित रूप से विश्व भर में सबसे अधिक समय का पाबंद समाज है। यह घटना उन्नीसवीं सदी की शुरूआत की है। जो [4] से ली गई है।

संदर्भ : [1] फुकुयामा एफ० (1996), ट्रस्ट : दि सोशल वर्चुज़ एण्ड दि क्रिएशन ऑफ़ प्रॉस्पेरिटी, फ्री प्रेस, न्यूयार्क। [2], गुहा० ए०एस० और बी गुहा (2012, आगामी), “दि परिसिस्टेन्स ऑफ़ गुडनेस,” जर्नल ऑफ़ इन्स्टीट्यूशनल एण्ड थ्योरेटिकल इकनॉमिक्स, [3], हांज़र, एम०डी० (2006), मॉरल माइंड्स, हार्वर कालिन्ज, न्यूयार्क [4] हाशीमोटो, टी (2008), जैपनीज़ क्लॉक्स एण्ड दि हिस्ट्री ऑफ़ पंचकुएलिटी इन मॉडर्न जापान,” ईस्ट एशियन सायंस, टेक्नॉलॉजि एण्ड सोसायटी वॉल्यूम 21

प्रमुख प्रेरक है, वहीं यह समझना भी ज़रूरी है कि ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और विश्वसनीयता वह सीमेंट है जो समाज को जोड़ता है। कभी-कभार अर्थशास्त्रियों ने इन सामाजिक मापदंडों, पसंद-नापसंद और प्रथाओं को अपरिवर्तनीय माना है। यदि ऐसा होता तो उनके असर का विश्लेषण करने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। लेकिन हम यह अवश्य जानते हैं कि किसी भी समाज में ये गुण बदले जा सकते हैं। ईमानदारी और सत्यनिष्ठा को विकसित किया जा सकता है और भ्रष्टाचार के प्रति अरुचि को बढ़ावा दिया जा सकता है।

2.62 यदि किसी राष्ट्र में ये गुण नहीं हैं या अपर्याप्त हैं तो संभावना यही है कि राष्ट्र गतिरुद्ध हो जाएगा और गरीबी के अराजकता भरे जाल में फंस जाएगा। मिसाल के तौर पर, संविदाओं को ही लीजिए। जैसाकि पहले कहा गया है, वे बाज़ार को विकसित होने में और आर्थिक जीवन का आधार बनने में समर्थ बनाते हैं। यदि किसी राष्ट्र में संविदाकारी व्यवस्था इतनी कमज़ोर है कि जब कोई बैंक किसी व्यक्ति को मकान खरीदने के लिए 20 वर्ष का रेहननामा देता है, और चूक का जोखिम बहुत होता है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि देश के बैंक बहुत बड़े घाटे उठाएंगे। इसका अर्थ यह है कि बैंक ऋण नहीं देंगे; और आवास बाज़ार बहुत अविकसित रह जाएगा तथा मकानों की कुल संख्या बहुत कम रहेगी। जटिल और बड़ी संविदाओं विशेषकर लंबी अवधि में चलने वाली संविदाओं को लागू करना सरकार की जिम्मेदारी है। सरकार लोगों को संविदाएं हस्ताक्षरित करने के लिए कानून और प्रवर्तन प्रक्रिया मुहैया कराती है। भारत में, सरकार आवास-बंधक बाज़ार और बैंक के क्षेत्र में अच्छा खासा काम कर रही है और लोग उन पर विश्वास करते हैं।

2.63 तथापि, आर्थिक जीवन रोजमर्रा की “संविदाओं” से भरपूर है—तुम मुझे टैक्स में यात्रा करने दो, मैं सफर खत्म होने पर तुम्हें पैसे दूंगा; मैं तुम्हें अभी पैसे देता हूँ और तुम अगले दो दिनों में मेरे घर की रंगाई-पुताई करो; या तुम अगले दो दिनों में मेरे घर की रंगाई-पुताई करो और मैं उसके बाद तुम्हें पैसे दूंगा। इन रोजमर्रा के कामों में सरकार और कानूनी अदालतों को ले आना संभव नहीं है। यहां मुख्य गारंटीकर्ता है लोगों की व्यक्तिगत ईमानदारी और विश्वसनीयता। जिन समाजों में इन गुणों का सफल विकास हुआ है, वे आज सफल हैं; जिन समाजों ने इन बातों पर ध्यान नहीं दिया है, वे आर्थिक प्रगति की दौड़ में पिछड़ गए हैं। यह ठीक-ठीक मालूम नहीं है कि इन मूल्यों को समाज में किस प्रकार रचाया-बसाया किया जाए। लेकिन उम्मीद की जा सकती है कि उनके महत्व के बारे में लिखने से परिवर्तन भी होगा, क्योंकि जनसाधारण यह जानता है कि *आर्थिक* विकास के लिए ये *सामाजिक* गुण उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितनी वे नीतियां जो सीधे अर्थव्यवस्था से जुड़ी हैं—जैसे स्टॉक बाज़ार चलाना या बाज़ार प्रतिस्पर्धा के नियम तैयार करना। इसके अलावा, बुनियादी साक्षरता और बेहतर शिक्षा भी इसमें सहायक होगी क्योंकि फिर लोग खुद सोच-समझकर इन निष्कर्षों पर पहुंच सकते हैं। साक्षरता का एक और महत्व यह है कि इससे जनसाधारण ऐसी नीतियों की मांग करेगा जो सचमुच बेहतर हैं, न कि वे जो सिर्फ सतही तौर पर अच्छी दिखाई देती हैं। और, भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में इससे राजनीतिज्ञों को बेहतर नीतियां अपनाने के लिए प्रेरणा मिलेगी। अन्ततः, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और विश्वसनीयता के संदर्भ में यदि ये राजनेता और नीति-निर्माता आदर्श बन जाएं तो वाकई वारे-न्यारे हो जाएंगे।